दुर्गासप्तशती

प्रकाशक : तेज कुमार बुक डिपो (प्रा०) लिमिटेड, लखनऊ
उत्तराधिकारी : नवल किशोर प्रेस बुक डिपो, लखनऊ

अथ

दुर्गासप्तशती

भाषानुवादसहिता प्रारभ्यते

सम्पादक : पं० कालीप्रसाद मिश्र

अनुवादक : पं० चण्डिका प्रसाद अवस्थी

तृतीय बार : १००० सन् - २०१२ मूल्य : रु. १२०.००

प्रस्तावना

एक शताब्दी से अधिक प्राचीन प्रकाशन-संस्थान 'नवलकिशोर प्रेस-बुकडिपो' के हम उत्तराधिकारी हैं। गत शताब्दी में प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की असफलता के बाद पूरे भारत में ज्ञानांधकार छा गया। यह वह युग था जब केवल श्रुति के माध्यम से ज्ञानार्जन होता था। उस अन्धकार में ज्ञान की ज्योति प्रज्ज्वलित की 'नवलकिशोर प्रेस' ने। तमाम धर्मशास्त्रों, ज्योतिष, वैद्यकीय एवं असंख्य साहित्यिक कृतियों का प्रकाशन किया। जिनकी संख्या पाँच हजार से ऊपर ही है।

उसी थाती और उस 'ज्ञानज्योति' को जलाये रखा मेरे प्रति, विद्यानुरागी स्व० तेजकुमार भार्गव ने, तेजकुमार बुकडिपो (प्रा०) लि० के माध्यम से। उनके पश्चात् उसी ज्ञान की मशाल को लिये हम भी आगे बढ़ते जा रहे हैं।

हमारे प्रकाशन के प्राचीन ग्रंथ सप्तशती सर्वस्व तथा श्रीदुर्गासप्तशती का संस्करण अप्राप्य था। माँ भगवती की प्रेरणा तथा उन्हीं की अनुकम्पा से श्रीदुर्गासप्तशती का नवीन संस्करण नये ढंग से सम्पादित कर प्रकाशित किया जा रहा है।

इस असार संसार में शक्ति की उपासना सर्वोपरि है। साधकों तथा जिज्ञासुओं के लिये सरल पाठ विधि संक्षेप में लिखी गयी है। भारतीय ऋषियों तथा अन्यान्य तन्त्रों की साधना पद्धति को ध्यान में रखते हुये पुस्तक को

* प्रस्तावना *

सरल एवं सुबोध बनाने का प्रयास किया गया है। इस पुस्तक की उपयोगिता इसलिए और अधिक बढ़ जाती है कि इसमें देव्यापराध 'क्षमापन' स्तोत्रम्, महिषासुरमर्दिनि स्तोत्रम्, श्रीदुर्गामानस पूजा, श्रीमहालक्ष्मी स्तोत्रम्, श्रीमहालक्ष्म्यष्टकम्, श्रीदुर्गाष्टोत्तरे शतनाम स्तोत्रम्, श्रीनवचण्डी शतचण्डी सहस्र चण्डी प्रयोग तथा प्रयोग विधि को दिया गया है। मानव अपने में पूर्ण नहीं होता है। इस नियमानुसार यदि किसी भी प्रकार की अशुद्धि पुस्तक में मिले तो अपने सुझावों द्वारा हमें उपकृत करें जिससे अगले प्रकाशन में उसको शुद्ध किया जा सके।

इस ग्रन्थ का परिश्रमपूर्वक बड़े मनोयोग से पुनर्सम्पादन पं० श्री कालीप्रसाद मिश्र, प्राध्यापक नवल-किशोर संस्कृत महाविद्यालय, हजरतगंज लखनऊ ने किया है। इसके अतिरिक्त महाविद्यालय के अन्य प्राचार्य/प्राध्यापक श्री स्वयम्भू नारायण शर्मा तथा डॉ० शेषनाथ शुक्ल ने भी अपने बहुमूल्य सुझावों तथा सहयोग द्वारा हमें उपकृत किया है। हम उनके आभारी हैं।

साररूपेण ध्यान देने की बात है कि देवी का पाठ चाहे जैसे भी किया जाये माँ फल अवश्य प्रदान करती हैं, क्योंकि वह तो जगद्जननी है। माँ की पुस्तक माँ को ही समर्पित है। शेष भगवती की कृपा।

कमला भार्गव

(प्र० सं०)

चैत्र शुक्ल पक्ष अष्टमी

संवत २०४६ वि०

सप्तशतीविषयानुक्रमाः

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
१. उपासना प्रक्रिया … …	१	११. प्रथमोऽध्यायः … …	६१
२. प्रयोग विधिः … …	१	१२. द्वितीयोऽध्यायः … …	८९
३. संकल्पः … …	१२	१३. तृतीयोऽध्यायः … …	१११
४. देव्याः कवचम् … …	१३	१४. चतुर्थोऽध्यायः … …	१२५
५. अर्गला स्तोत्रम् … …	२७	१५. पञ्चमोऽध्यायः … …	१४२
६. कीलकम् … …	३५	१६. षष्ठोऽध्यायः … …	१६८
७. वेदोक्तं रात्रिसूक्तम् … …	४१	१७. सप्तमोऽध्यायः … …	१७६
८. तन्त्रोक्त रात्रिसूक्तम् … …	४५	१८. अष्टमोऽध्यायः … …	१८५
९. नवार्ण विधि … …	४८	१९. नवमोऽध्यायः … …	२०४
१०. सप्तशतीन्यासः … …	५८	२०. दशमोऽध्यायः … …	२१७

❀ विषय-सूची ❀

विषय	पृष्ठ
२१. एकादशोऽध्यायः	२२७
२२. द्वादशोऽध्यायः	२४६
२३. त्रयोदशोऽध्यायः	२५८
२४. पर्यवसान की विधि एवं क्रिया ...	२६६
२५. ऋग्वेदोक्तंदेवीसूक्तम्	२७२
२६. तंत्रोक्त देवीसूक्तम्	२७३
२७. प्राधानिकं रहस्यम्	२७९
२८. वैकृतिकं रहस्यम्	२८९
२९. मूर्त्ति रहस्यम्	३०१
३०. सिद्धकुंजिका स्तोत्रम्	३०९
३१. क्षमा-प्रार्थना	३१२
३२. देव्यापराधक्षमापन् स्तोत्रम् ...	३१३
३३. महिषासुरमर्दिनि स्तोत्रम् ...	३१७
३४. श्रीदुर्गाष्टोत्तरशतनाम स्तोत्रम् ...	३२५
३५. श्रीदुर्गामानस-पूजा	३२९
३६. श्रीमहालक्ष्मी स्तोत्रम्	३३४
३७. श्रीमहालक्ष्म्यष्टकम्	३३९
३८. श्रीनवचण्डीशतचण्डीसहस्रचण्डी प्रयोगः	३४१
३९. आरती	३५८

॥ इत्यनुक्रमणिका समाप्ता ॥

उपासना प्रक्रिया

उपासक स्नानादि से निवृत्त होकर एकान्त स्थान में शुद्ध एवं सुखद आसन पर पूर्वाभिमुख होकर बैठें। साथ में शुद्ध जल, पूजन सामग्री और श्री दुर्गा सप्तशती की पुस्तक रखें। सर्वप्रथम गुरु ध्यान, आसन-शुद्धि तथा भूमि-शुद्धि कर लेनी चाहिये। मंत्र इस प्रकार हैं—

ॐ श्री गुरुवे नमः ॐ श्री गुरुवे नमः ॐ श्री गुरुवे नमः। तत्त्व शुद्धि हेतु चार बार आचमन करे—

ॐ ऐं आत्मतत्त्वं शोधयामि नमः स्वाहा। ॐ ह्रीं विद्यातत्त्वं शोधयामि नमः स्वाहा। ॐ क्लीं शिव तत्त्वं शोधयामि नमः स्वाहा। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं सर्वतत्त्वं शोधयामि नमः स्वाहा।

पुनः हाथ धोकर दाहिने हाथ में कुश की पावित्री धारण करें, उस समय इस मंत्र का पाठ करें—

ॐ पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव, उत्पुनाभ्याच्छद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः । तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छकेयम् ॥

इस प्रकार पावित्री धारण करने के बाद तीन बार प्राणायाम करे। तत्पश्चात्—

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपिवा ।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥

ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु ॥

मंत्र को पढ़कर अपने ऊपर जल छिड़कना चाहिये । पुनः—

अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमिसंस्थिताः । ये भूता विघ्नकर्तास्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया । अपसर्पन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतोदिशः । सर्वेषाम विरोधेन पूजाकर्म समारभे ।

उपर्युक्त मंत्र पढ़कर आगे-पीछे, ऊपर-नीचे जल छिड़कना चाहिये (पीली सरसों या चावल भी छिटक सकते हैं) ।

आसन शुद्धि

पृथ्वि त्व्याधृता लोका देवित्वं विष्णुनाधृता ।
त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम् ॥

इस मंत्र को पढ़कर धरती पर हाथ लगाना चाहिये । हथेली ऊपर को रहे, अंगुलियाँ धरती पर टिकें । तदनन्तर घी का दीपक जलाकर देवपीठ के दाहिने भाग में अक्षतपुञ्ज पर उसे रख दें और "ॐ दीप ज्योतिषे नमः" – यह मंत्र बोलकर गन्धपुष्प से उसका पूजन करे । फिर दीप में भगवती (इष्टदेव) के ज्योतिर्मय रूप की भावना करके इस प्रकार प्रार्थना करे—

भो दीप देवरूपस्त्वं कर्म साक्षी ह्यविघ्न कृत ।
यावत् कर्म समाप्तिः स्यात् तावत त्वं सुस्थिरो भव ॥

स्वस्ति वाचनोपरान्त संकल्प करना चाहिये (संकल्प आगे पृष्ठ २ पर देखें) । संकल्प (प्रतिज्ञा) करके देवी का ध्यान करते हुए पुस्तक के लिये पीठ (छोटी चौकी)

स्थापित करे। मूल नवार्ण मंत्र –"ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे" से आधार शक्ति की पूजा करके पायों में धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य तथा पूर्वादि दिशाओं में अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य की पूजा करे तत्पश्चात् पीठ पर कमल की भावना करके उसकी कर्णिका में पुस्तक को विराजमान कर पञ्चोपचार की विधि से पुस्तक की पूजा इस मंत्र से करे—

ॐ नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्मताम् ॥
ध्यात्वा देवीं पञ्चपूजां कृत्वा योन्या प्रणम्य च ।
आधारं स्थाप्य मूलेन स्थापयेत्तत्र पुस्तकम् ॥

पुनः योनिमुद्रा का प्रदर्शन करके आदि शक्ति भगवती को प्रणाम करे। तत्पश्चात् शापोद्धार करना चाहिये। शापोद्धार के विषय में बहुत मतभेद पाया जाता है। सप्तशती सर्वस्व के उपासनाक्रम में पहले शापोद्धार करके षडङ्ग सहित

पाठ करने का निर्णय मिलता है। अतः कवचादि के पूर्व शापोद्धार करना चाहिये। कात्यायनी तन्त्र के मतानुसार–शापोद्धार तथा उत्कीलन का प्रकार इस प्रकार है:—

अन्त्याद्यर्क द्विरु द्रत्रि दिगब्ध्यङ्केष्वि भर्तव: ।
अश्वोऽश्व: इति सर्गाणां शापोद्धारे मनो: क्रम: ।।
उत्कीलने चरित्राणां मध्याद्यन्तमितिक्रम: ।

अत: सप्तशती के अध्यायों का तेरह-एक, बारह-दो, ग्यारह-तीन, दस-चार, नौ-पाँच तथा आठ-छ: के क्रम में पाठ करके अन्त में सातवें अध्याय को दो बार पढ़े। यह शापोद्धार विधि हुई। पहले मध्यम चरित्र का, पुन: प्रथम चरित्र का तदनन्तर उत्तर चरित्र का पाठ करना उत्कीलन है। कुछ विद्वानों के मतानुसार कीलक में वर्णित कृष्णपक्ष की अष्टमी और चतुर्दशी तिथि में देवी को अपना सर्वस्व समर्पण करके उन्हीं का होकर, उनके प्रसाद-स्वरूप (कल्पना करे, भगवती कह रही हैं इसे ग्रहण करो) से प्रत्येक वस्तु को प्रयोग में लाना ही शापोद्धार और उत्कीलन है।

अन्य विद्वानों के मतानुसार छः अङ्गों सहित पाठ करना शापोद्धार है और अङ्गों का त्याग ही शाप है। उपर्युक्त रीति से जन साधारण को आज के युग में पाठ असंभव सा प्रतीत होगा। एतदर्थ भारत में प्रचलित नाना उपासना क्रम को ध्यान में रखते हुए साधकों हेतु सरलतम विधि प्रस्तुत है।

—:०:—

अथ शापोद्धार मन्त्रः

ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं क्रां क्रीं चण्डिका देव्यै शापनाशानुग्रहं कुरु कुरु स्वाहा।

इस मंत्र का आदि और अन्त में सात बार जप करे। इसके बाद उत्कीलन मंत्र के जप का विधान है—

अथ मंत्रः—

ॐ श्रीं क्लीं ह्रीं सप्तशति चण्डिके उत्कीलनं कुरु-कुरु स्वाहा।

इस मन्त्र का जप आदि और अन्त में इक्कीस-इक्कीस बार होना चाहिये।

❀ उपासना प्रक्रिया ❀

इसके पश्चात् आदि और अन्त में सात-सात बार मृतसंजीवनी विद्या का जप का विधान है—

अथ मंत्रः

ॐ ह्रीं ह्रीं वं वं ऐं ऐं मृतसंजीवनि विद्ये मृतमुत्थापयोत्थापय क्रीं ह्रीं ह्रीं वं स्वाहा ॥

मारीच कल्प के अनुसार सप्तशती-शाप-विमोचन मंत्र का जप आरम्भ में ही एक सौ आठ बार करने का विधान है, अन्त में नहीं । अथ मन्त्रः

ॐ श्रीं श्रीं क्लीं हूँ ॐ ऐं क्षोभय मोहय उत्कीलय उत्कीलय ठं ठं ।

रुद्रयामल महातन्त्र के अन्तर्गत दुर्गाकल्प में वर्णित चण्डिका-शाप-विमोचन मंत्रों का पाठ आरम्भ में ही करना चाहिये । अथ मंत्रः

ॐ अस्य श्रीचण्डिकाया ब्रह्मवशिष्ठविश्वामित्रशापविमोचनमन्त्रस्य वशिष्ठ-नारदसंवादसामवेदाधिपतिब्रह्माण ऋषयः सर्वैश्वर्यकारिणी श्रीदुर्गा देवता चरित्रत्रयं

वीजं ह्रीं शक्तिः त्रिगुणात्मस्वरूपचण्डिकाशापविमुक्तौ मम संकल्पितकार्यसिद्धयर्थे जपे विनियोगः ।

ॐ (ह्रीं) रीं रेतःस्वरूपिण्यै मधुकैटभमर्दिन्यै ब्रह्मवशिष्ठविश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव ॥ १ ॥ ॐ श्रीं बुद्धिस्वरूपिण्यै महिषासुरसैन्यनाशिन्यै ब्रह्मवशिष्ठविश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव ॥ २ ॥ ॐ रं रक्तस्वरूपिण्यै महिषासुरमर्दिन्यै ब्रह्मवशिष्ठविश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव ॥ ३ ॥ ॐ क्षुं क्षुधास्वरूपिण्यै देववन्दितायै ब्रह्मवशिष्ठविश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव ॥ ४ ॥ ॐ छां छायास्वरूपिण्यै दूतसंवादिन्यै ब्रह्मवशिष्ठविश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव ॥ ५ ॥ ॐ शं शक्तिस्वरूपिण्यै धूम्रलोचनघातिन्यै ब्रह्मवशिष्ठविश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव ॥ ६ ॥ ॐ तृं तृषास्वरूपिण्यै चण्डमुण्डवधकारिण्यै ब्रह्मवशिष्ठविश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव ॥ ७ ॥ ॐ क्षां क्षान्तिस्वरूपिण्यै रक्तबीजवधकारिण्यै ब्रह्मवशिष्ठविश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव ॥ ८ ॥ ॐ जां जातिस्वरूपिण्यै निशुम्भवधकारिण्यै ब्रह्मवशिष्ठविश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव ॥९॥ ॐ लं लज्जास्वरूपिण्यै शुम्भवधकारिण्यै ब्रह्मवशिष्ठविश्वामित्रशापाद विमूक्ता भव

॥ १० ॥ ॐ शां शान्तिस्वरूपिण्यै देवस्तुत्यै ब्रह्मवशिष्ठविश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव ॥ ११ ॥ ॐ श्रं श्रद्धास्वरूपिण्यै सकलफलदात्र्यै ब्रह्मवशिष्ठविश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव ॥ १२ ॥ ॐ कां कान्तिस्वरूपिण्यै राजवरप्रदायै ब्रह्मवशिष्ठविश्वामित्र-शापाद् विमुक्ता भव ॥ १३ ॥ ॐ मां मातृस्वरूपिण्यै अनर्गलमहिमसहितायै ब्रह्म-वसिष्ठविश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव ॥ १४ ॥ ॐ ह्रीं श्रीं दुं दुर्गायै सं सर्वैश्वर्यकारिण्यै ब्रह्मवशिष्ठविश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव ॥ १५ ॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं नमः शिवायै अभेद्यकवचस्वरूपिण्यै ब्रह्मवशिष्ठविश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव ॥ १६ ॥ ॐ क्रीं काल्यै कालि ह्रीं फट् स्वाहायै ऋग्वेदस्वरूपिण्यै ब्रह्मवशिष्ठविश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव ॥ १७ ॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपिण्यै त्रिगुणा-त्मिकायै दुर्गादेव्यै नमः ॥ १८ ॥

इत्येवं हि महामन्त्रान् पठित्वा परमेश्वर ।
चण्डीपाठं दिवा रात्रौ कुर्यादेव न संशयः ॥ १९ ॥

एवं मन्त्रं न जानाति चण्डीपाठं करोति यः ।
आत्मानं चैव दातारं क्षीणं कुर्यान्न संशयः ॥ २० ॥

—:(०):—

अन्य पठनीयम् तथा ग्रहणीयम्

१—जो एक दिन में पाठ न कर सके वह एक दिन में केवल मध्यम चरित्र (अध्याय २ से ४ तक) का दूसरे दिन शेष दो चरित्रों का (प्रथम अध्याय तथा ५ से १३ तक) पाठ करे। यह शास्त्र सम्मत है।

२—भगवती का ध्यान करते हुए, मीठा स्वर, अच्छरों का स्पष्ट उच्चारण, पदों का विभाग उत्तम स्वर, धीरता तथा लय के साथ बोलना ये सब पाठकों के उत्तम गुण हैं।

३—रागपूर्वक गाना, जल्दबाजी करना, सिर हिलाना अपने हाथ से लिखी

हुई पुस्तक पर पाठ करना, अर्थ की जानकारी न रखना, अधूरा मंत्र याद करना ऐसा पाठक अधम माना जाता है ।

४—जब तक अध्याय की पूर्ति न हो, तब तक बीच में पाठ न बन्द करे । यदि किसी कारण-वशात् अध्याय के बीच में पाठ का विराम हो जाये तो पुनः प्रत्येक बार पूरे अध्याय का पाठ करना चाहिए । कवच, अर्गला कीलक और तीनों रहस्य ही सप्तशती के छः अङ्ग माने गये हैं ।

५—अध्याय के समाप्त होने पर इति, वध, अध्याय, तथा समाप्त शब्द का उच्चारण नहीं करना चाहिए । उसको इस प्रकार कहना चाहिये—श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णि के मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये प्रथमः ॐ तत्सत । इसी प्रकार द्वितीयः तृतीयः आदि कहकर समाप्त करना चाहिये ।

६—पुस्तक को हाथ में लेकर पाठ करने से उसे आधे ही फल की प्राप्ति होती है ।

७—जिसकी पत्नी दूर देश में हो, पतित हो, रजस्वला हो और अनिष्ट करने वाली हो उसके पति को अन्य कुश की पत्नी बनाकर नित्यकर्म करने का अधिकार है।

८—देवताओं के प्रीत्यर्थ प्रज्वलित दीप को बुझाना नहीं चाहिए।

९—तृचभास्कर के मतानुसार—शालग्राम और बाणलिङ्ग का आवाहन तथा विसर्जन नहीं होता है।

१०—आचारेन्दु में लिखित नियमानुसार सब देवी-देवताओं का पूजन पुरुष सूक्त से किया जा सकता है।

११—कुलार्णव के मतानुसार—पूजा करते समय यदि गुरुदेव, ज्येष्ठ व्यक्ति या पूज्य व्यक्ति आ जाय तो उनको उठकर प्रणाम कर उसकी आज्ञा से शेष कर्म समाप्त करे।

१२—मृत्तिका की मूर्ति का आवाहन और विसर्जन होता है और अन्त में शास्त्रीयविधि से गङ्गा-प्रवाह या नदी में प्रवाह किया जाता है। जैसे काली, सरस्वती, लक्ष्मी आदि।

१३—स्कन्दपुराण का मत है कि—पौषमास की शुक्ल दशमी तिथि, चैत्र की पञ्चमी और श्रावण की पूर्णिमा तिथि को लक्ष्मी प्राप्ति के लिये लक्ष्मी का पूजन करे। यदि गुरुवार युक्त पूर्णिमा हो तो लक्ष्मी पूजन करने से पुनर्जन्म नहीं होता है और धन पुत्र आदि बढ़ते हैं।

१४—कालचन्द्रिका के मतानुसार—कृष्ण पक्ष में रिक्ता तिथि में, दशमी, द्वादशी और श्रवणादि नक्षत्र में लक्ष्मी की पूजा न करे।

१५—स्कन्द का मत है कि—अपराह्न काल में, रात्रि में, कृष्ण पक्ष में, द्वादशी तिथि में और अष्टमी को लक्ष्मी का पूजन प्रारम्भ न करे।

१६—शनिवार, मङ्गलवार, बुध और शुक्रवार को लक्ष्मी की पूजा प्रारम्भ न करे।

१७—स्मृतितत्त्व के कथनानुसार—सोमवती अमावस्या, रविवारयुक्त सप्तमी, भौमवार युक्त चतुर्थी और गुरुवार युक्त अष्टमी को जो व्यक्ति चाप या पुण्य करता है वह साठ हजार वर्ष तक अक्षय हो जाता है।

१८—लक्ष्मी की कामनावालों को ताँबे के कुण्ड या ईंट के निर्मित कुण्ड में हवन करने का विधान मिलता है।

१९—लक्ष्मी प्राप्ति के लिये मण्डप बनाकर जो हवन किया जाता है उसके पूर्व भूमि का शुभ मुहूर्त में संशोधन करना उचित है।

२०—बलिदान देने से दुर्गा प्रसन्न अवश्य होती हैं, लेकिन देने वाले को हिंसा जन्य पाप अवश्य लगता है। यह **ब्रह्मवैवर्त प्रकृति खण्ड** का मत है। उत्सर्ग मात्र करने वाले, छेदन करने वाले, पुष्टि करने वाले, रक्षक, आगे पीछे बधने वाले बध के भागी होते हैं।

२१—अशन, शयन, दान, भोजन, वस्त्रसंग्रह, विवाद और विवाह के समयों पर छींक शुभ मानी गई है।

२२—मलिन वस्त्र पहिनकर, मूषक आदि के काटे वस्त्र युक्त हो, केशादि बाल कर्तन युक्त और मुख दुर्गन्ध युक्त हो जो जप आदि करता है उसे देवता नाश कर देते हैं।

२३—अत्रि स्मृति के कथनानुसार—दिन में कपथ्यि (कैथ) की छाया में बैठना, रात्रि में दधिभोजन और कपास की दतूवन करने से लक्ष्मी का नाश होता है।

२४—पद्मपुराण के मत से—जहाँ अपूज्यों की पूजा होती है और विद्वानों का अनादर होता है उस स्थान पर दुर्भिक्ष, मरण और भय उपस्थित होता है।

२५—हेमाद्रिका के मत से—कमल को पाँच रात विल्वपत्र को दस रात और तुलसी को ग्यारह रात बाद प्रक्षालन कर पूजन कार्य में लिया जा सकता है।

२६—द्वादशी, संक्रान्ति, रविवार पक्षान्त, निशि और सन्ध्या काल में तुलसी पत्र न तोड़े।

२७—आचारेन्दु के मतानुसार—पञ्चामृत में यदि सब वस्तुयें प्राप्त न हो तो केवल दुग्ध से स्नान कराने मात्र से पञ्चामृतजन्य फल मिलता है। पञ्चामृत में सम विभाग ग्रहण करने का विधान मिलता है।

२८—अक्षत को यव भी कहते हैं। पञ्चायतन पूजन में अक्षत का निषेध नहीं

मिलता है। यह **हेमाद्री मत** है कि केवल शालग्राम पर अक्षत नहीं चढ़ता। लाल रंग मिश्रित चावल चढ़ाया जा सकता है। अर्घ्यादि कार्य में अक्षत का ग्रहण है। यह **निबन्ध** का मत है।

२९—हाथ में धारण किये हुये पुष्प, ताँबे के पात्र में चन्दन और चर्मपात्र में गङ्गा जल अपवित्र हो जाते हैं।

३०—पिघला हुआ घृत और पतला चन्दन देवताओं को नहीं चढ़ाना चाहिये।

३१—दीपक से दीपक को जलाने से प्राणी दरिद्री और रोगी होता है। दक्षिणाभिमुख दीपक को न रखे। देवी के बायें या दाहिने दीपक रखे।

॥ इति शुभम् ॥

—:०:—

घंटाशूलहलानि शंखमुसले चक्रं धनुः सायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम्।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनूभजे शम्भादिदैत्यार्दितीम्।।

ॐ नमश्चण्डिकायै ॥

दुर्गासप्तशती

भाषानुवाद-संहिता

अथ प्रयोगविधिः

ॐ गणाधिपतये नमः ॥ अथ प्रयोगान्तराणि, कात्यायनीतन्त्रोक्तानि प्रतिश्लोकमाद्यन्तयोः प्रणवं जपेन्मन्त्रसिद्धिः ॥ १ ॥ अग्रे सर्वत्र श्लोकपदं मन्त्रोपलक्षणम् सप्रणवमनुलोमव्याहृतित्रयमादौ अन्ते तु विलोमं-तदित्येवं प्रतिश्लोकं कृत्वा शतावृत्तिपाठेऽतिशीघ्रं सिद्धिः ॥ २ ॥ प्रतिश्लोकमादौ जातवेदस इत्यृचं पठेत्सर्वकार्यसिद्धिः ॥ ३ ॥ अपमृत्यु-

वारणाय त्र्यम्बकमन्त्रम्पठेत् ।। आदावन्ते च शतमित्यर्थः प्रतिश्लोकं तन्मन्त्रजप इत्यन्यत्र ।। ४ ।। प्रतिश्लोकं शूलेन पाहि नो देवीति पाठादपमृत्युनाशः अस्य केवलस्यापि श्लोकस्य लक्षमयुतं सहस्रं सशतं वा जपे अपमृत्युवारणम् ।। ५ ।। प्रतिश्लोकं शरणागतदीनार्तेति श्लोकं पठेत्सर्वकार्यसिद्धिः ।। ६ ।। प्रतिश्लोकं करोतु सा नः शुभेत्यर्द्धं पठेत्सर्वकार्यसिद्धिः ।। ७ ।। स्वाभीष्टवरप्राप्तये एवं देव्या वरं लब्ध्वेति श्लोकं पठेत् ।। ८ ।। सर्वापत्तिवारणाय प्रतिश्लोकं दुर्गे स्मृतेति पठेत् अस्य केवलस्यापि श्लोकस्य कार्यानुसारेण लक्षमयुतं सहस्रं शतं वा जपः ।। ९ ।। सर्वबाधेत्यस्य लक्षजपे प्रतिश्लोकपाठे वा श्लोकोक्तं फलम् ।। १० ।। इत्थं यदा यदा बाधेति श्लोकजपे महामारीशान्तिः ।। ११ ।। ततो वव्रे नृपो राज्यमितिमन्त्रत्रयेजपे पुनः स्वराज्यलाभः ।। १२ ।। हिनस्ति

दैत्यतेजांसीत्यनेन सदीपबलिदाने घण्टाबन्धने च बालग्रहशान्तिः ॥ १३ ॥ आद्यावृत्तिमनुलोमेन पठित्वा ततो विपरीतक्रमेण द्वितीयामनुलोमेन तृतीयामित्येवमावृत्तित्रयेण शीघ्रकार्यसिद्धिः ॥ १४ ॥ सर्वापत्तिवारणाय दुर्गे स्मृतेत्यर्द्धं ततो यदन्ति यच्च दूरके इत्यृचं तदन्ते दारिद्र्य दुःखेत्यर्द्ध-मेव कार्यानुसारेण लक्षमयुतं सहस्रं शतं वा जपः ॥ १५ ॥ कांसोस्मी-त्यृचं प्रतिश्लोकं पठेल्लक्ष्मीप्राप्तिः ॥ १६ ॥ प्रतिश्लोकमनृणा अस्मि-न्नित्यृचं पठेदृणपरिहारः ॥ १७ ॥ मारणार्थमेवमुक्त्वा समुत्पत्येति श्लोकं प्रतिश्लोकं पठेन्मारणोक्तावृत्तिभिः फलसिद्धिः ॥ १८ ॥ ज्ञानिनामपि चेतांसि इति श्लोकजपमात्रेण सद्यो मोहनमित्यनुभवसिद्धम् प्रतिश्लोकं तच्छ्लोकपाठे त्ववश्यम् ॥ १९ ॥ रोगानशेषानिति श्लोकस्य प्रतिश्लोकं पाठे सकलरोगनाशः तन्मात्रजपेऽपि सः ॥ २० ॥ इत्युक्ता सा तदा

देवी गम्भीरेतिश्लोकस्य प्रतिश्लोकं पाठे पृथग्जपे वा विद्याप्राप्तिर्वाग्वैकृतनाशश्च ॥ २१ ॥ भगवत्या कृतं सर्वमित्यादि द्वादशोत्तरशताक्षरो मन्त्रः सर्वकामदः सर्वापत्तिवारणश्च ॥ २२ ॥ देवि प्रपन्नार्तिहरे इति श्लोकस्य यथाकार्यं लक्षायुतसहस्रशतान्यतमसंख्यया जपे प्रतिश्लोकं पाठे वा सर्वापन्निवृत्तिः सर्वकामाप्तिश्च एषु प्रयोगेषु प्रतिश्लोकं दीपाग्रे केवलमेव नमस्करणेऽतिशीघ्रं सिद्धिः प्रतिश्लोकं कामबीजसम्पुटितस्य एकचत्वारिंशद्दिनं त्रिरावृत्तौ सर्वकामसिद्धिः ॥ २३ ॥ एकविंशतिदिनपर्यन्तमुक्तरीत्या प्रत्यहं द्वादशावृत्तौ वशीकरणम् ॥ २४ ॥ मायाबीजसम्पुटितस्य फट्पल्लवसहितस्य सप्तदिनपर्यन्तं त्रयोदशावृत्तावुच्चाटनसिद्धिः ॥ २५ ॥ तादृश्यामेव दिनचतुष्टयमेकादशावृत्तौ सर्वोपद्रवनाशः ॥ २६ ॥ एकोनपञ्चाशद्दिनपर्यन्तं प्रतिश्लोकं श्रीबीजसम्पुटितस्य

पञ्चदशावृत्तौ लक्ष्मीप्राप्तिः ॥ २७ ॥ प्रतिश्लोकं वाग्बीजसम्पुटितस्य शतावृत्त्या विद्याप्राप्तिः ॥ २८ ॥ अथ शतचण्डीविधिः ॥ शङ्करस्य भवान्या वा प्रासादनिकटे शुभम् । मण्डपं द्वारवेदाढ्यं कुर्यात्सध्वजतोरणम् ॥ १ ॥ तत्र कुण्डं प्रकुर्वीत प्रतीच्यां मध्यतोऽपि वा । स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्वा वृणुयाद्दशवाडवान् ॥ २ ॥ जितेन्द्रियान्सदाचारान् कुलीनान्सत्यवादिनः । वाडवा ब्राह्मणाः ॥ व्युत्पन्नाँश्चण्डिकापाठरताँल्लज्जादयावतः ॥ ३ ॥ मधुपर्कविधानेन स्वर्णवस्त्रादिदानतः । जपार्थमासनं मालां दद्यात्तेभ्योऽपि भोजनम् ॥ ४ ॥ ते हविष्यान्नमश्नन्तो मन्त्रार्थगतमानसाः । भूमौ शयानाः प्रत्येकं जपेयुश्चण्डिकास्तवम् ॥ ५ ॥ मार्कण्डेयपुराणोक्तं दशकृत्वः सचेतसः । नवार्णं चण्डिकामन्त्रं जपेयुश्चायुतं पृथक् ॥ ६ ॥ पृथक्सम्पुटीकरणादिति शेषः । प्रत्येकंब्राह्मणैरयुतजपः

कार्यः अष्टमीनवमीचतुर्दशीपौर्णमासीषु यथा शतावृत्तिसमाप्तिर्भवति तथारम्भः कर्तव्य इति सांप्रदायिकाः। यजमानः पूजयेच्च कन्यायां नवकं शुभम्। द्विवर्षाद्या दशाब्दान्ताः कुमारीः परिपूजयेत्॥ तासां क्रमेण नामानि—कुमारी १ त्रिमूर्तिः २ कल्याणी ३ रोहिणी ४ कालिका ५ शाम्भवी ६ दुर्गा ७ चण्डिका ८ सुभद्रा ९ इतिनाममन्त्रैस्तासां पूजा तत्र हीनाधिकाङ्गी कुष्ठव्रणयुता अन्धा काणा कुरूपा केकरा कुब्जी लोमयुग्देहा दासीजा रोगिणीत्येवमाद्या 'वर्ज्याः। विप्रां सर्वेष्टसंसिद्ध्यै यशसे क्षत्रियोद्भवाम्। वैश्यजां धनलाभाय पुत्राप्त्यै शूद्रजां यजेत्॥ गन्धपुष्पधूपदीपभक्ष्यभोज्यैर्यथाशक्तिवस्त्राभरणैश्च पूजयेत्॥ द्विवर्षा सा कुमार्युक्ता त्रिमूर्तिर्हायनत्रिका। चतुरब्दा तु कल्याणी पञ्चवर्षा तु रोहिणी॥ १॥ षडब्दा कालिका प्रोक्ता चण्डिका सप्तहायना। अष्टवर्षा

शाम्भवी स्यात् दुर्गा तु नवहायना ॥ सुभद्रा दशवर्षोक्ताः नाममन्त्रैः प्रपूजयेत् । तासामावाहने मन्त्रः प्रोच्यते शङ्करोदितः । मन्त्राक्षरमयीं लक्ष्मीं मातॄणां रूपधारिणीम् । नवदुर्गात्मिकां साक्षात्कन्यामावाहयाम्यहम् ॥ कुमारिकादिकन्यानां पूजामन्त्रान्ब्रुवेऽधुना । जगत्पूज्ये जगद्वन्द्ये सर्वशक्तिस्वरूपिणि ॥ पूजां गृहाण कौमारि जगन्मातर्नमोऽस्तुते । त्रिपुरां त्रिपुराधारां त्रिवर्षां ज्ञानरूपिणीम् ॥ त्रैलोक्यवन्दितां देवीं त्रिमूर्तिं पूजयाम्यहम् । कालात्मिकां कलातीतां कारुण्यहृदयां शिवाम् । कल्याणजननीं देवीं कल्याणीं पूजयाम्यहम् ॥ अणिमादिगुणाधारामकाराद्यक्षरात्मिकाम् । अनन्तशक्तिकां लक्ष्मीं रोहिणीं पूजयाम्यहम् ॥ कामचारीं शुभां कान्तां कालचक्रस्वरूपिणीम् । कामदां करुणोदारां कालिकां पूजयाम्यहम् ॥ चण्डवीरां चण्डमायां चण्डमुण्डप्रभञ्जनीम् । पूजयामि सदा

देवीं चण्डिकां चण्डविक्रमाम् ॥ सदानन्दकरीं शान्तां सर्वदेवनमस्कृताम् । सर्वभूतात्मिकां लक्ष्मीं शाम्भवीं पूजयाम्यहम् । दुर्गमे दुस्तरे कार्ये भव-दुःखविनाशिनीम् ॥ पूजयामि सदा भक्त्या दुर्गां दुर्गातिनाशिनीम् । सुन्दरीं स्वर्णवर्णाभां सुखसौभाग्यदायिनीम् ॥ सुभद्रजननीं देवीं सुभद्रां पूजयाम्यहम् । एतैर्मन्त्रैः पुराणोक्तैस्तांतां कन्यां समर्चयेत् ॥ (इति पूजनं कुमारिकाणाम्) वेद्यां विरचिते रम्ये सर्वतोभद्रमण्डले । घटं संस्थाप्य विधिना तत्रावाह्यार्चयेच्छिवाम् ॥ तदग्रे कन्यकाश्चापि पूजयेद् ब्राह्मणा-नपि । उपचारैस्तु विविधैर्नवार्णावरणान्यपि ॥ ॐकारः प्रथमं पीठं पूर्णपी-ठमतः परम् । तृतीयं कामपीठं च पूजयेत्सम्प्रदायतः ॥ पूर्वादिदिक्षु पीठ-स्य गणेशादिचतुष्टयम् । गणेशक्षेत्रपालौ च पादुके वटुकास्त्वयः ॥ आग्नेय्यादिचतुर्दिक्षु पूज्यं देवीचतुष्टयम् । जया च विजया चैव जयन्ती

चापराजिता ॥ पूर्वोक्तमन्त्रे पूर्वकोणे सरस्वतीसहितो ब्रह्मा श्रीसहितो विष्णुर्नैर्ऋत्यामुमया शिवो वायव्यां ,षट्कोणे चक्रमध्यस्थमध्यबीजे श्रीमहालक्ष्मी ह्रीं महाकाली ऐं महासरस्वती दक्षिणवामयोः उदक्सिंहो दक्षिणे महिषः षट्कोणेषु नन्दजारक्तदन्तिकाशाकम्भरीदुर्गाभीमाभ्रामर्यः सबिन्दुनामाद्यवर्णताराद्याश्चासां नाममन्त्रः पूजादौ तारः प्रणव अष्टत्रयेषु ब्रह्माणी माहेश्वरी कौमारीवैष्णवीवाराहीनारसिंह्यथैन्द्रीचामुण्डा उक्तरीत्या नाममन्त्रैः पूज्याः ततो विष्णुमायादिचतुर्विंशतिदेवताः प्रागादिक्रमेण केसरेषु पूज्याः प्रतिपत्रञ्च केसरत्रयम् ताश्च विष्णुमाया १ चेतना २ बुद्धि ३ निद्रा ४ क्षुधा ५ छाया ६ शक्ति ७ तृष्णा ८ क्षान्ति ९ जाति १० लज्जा ११ शान्ति १२ श्रद्धा १३ कान्ति १४ लक्ष्मी १५ धृति १६ वृत्ति १७ स्मृति १८ दया १९ तुष्टि २० पुष्टि २१

अथ संकल्पः

अद्येहेत्यादितिथौ मम (यजमानस्य वा) सर्वाभीष्टसिद्ध्यर्थं-मायुरारोग्यैश्वर्याभिवृद्ध्यर्थं सर्वदा हर्षविजयकामनासिद्ध्यर्थं-श्रीमहाकालीमहालक्ष्मी महासरस्वतीदेवताप्रीत्यर्थंसर्वापन्निवारणार्थं (कवचार्गलकीलकादिसहितम्) मार्कण्डेयपुराणोक्तमार्कण्डेय उवाच इति पूर्वकसावर्णिस्सूर्यतनय इत्यारभ्य सावर्णिर्भविता मनुरित्यन्तं रात्रिसूक्तादिदेवीसूक्तान्त मादावन्तेऽष्टोत्तर शत नवार्ण मन्त्र-सम्पुटितम् (अमुकमन्त्रेण सम्पुटितं वा) सप्तशतीस्तवपाठमहं करिष्ये ।

अथ देव्याःकवचम्

ॐ अस्य श्रीचण्डीकवचस्य ब्रह्मा ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, चामुण्डा देवता, अङ्गन्यासोक्तमातरो बीजम्, दिग्बन्धदेवतास्तत्त्वम्, श्रीजगदम्बाप्रीत्यर्थे सप्तशतीपाठाङ्गत्वेन जपे विनियोगः ।

ॐ नमश्चण्डिकायै । मार्कण्डेय उवाच । ॐ यद्गुह्यं परमं लोके सर्वरक्षाकरं नृणाम् । यन्न कस्यचिदाख्यातं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥ ब्रह्मोवाच

अस्ति गुह्यतमं विप्र सर्वभूतोपकारकम् । देव्यास्तु कवचं पुण्यं तच्छृणुष्व महामुने ॥ २ ॥ प्रथमं शैलपुत्री च

महर्षि मार्कण्डेय ने ब्रह्मा से पूछा—हे पितामह, संसार में जो परम गुप्त हो, जिससे मनुष्यों की रक्षा हो और जो किसी से न कहा गया हो वह मुझसे कहिए । १ ।

ब्रह्मा ने कहा—हे महामुने, अति गुप्त और सब प्राणियों का उपकारक देवी का पवित्र कवच है, वह मैं तुमको बतलाता हूँ, सुनो । २ । प्रथम शैलपुत्री, दूसरी ब्रह्मचारिणी,

तीसरी चन्द्रघंटा, चौथी कूष्मांडा। पाँचवीं स्कन्द-माता, छठी कात्यायनी, सातवीं कालरात्री, आठवीं महागौरी। नवीं सिद्धिदा, ये नव दुर्गा के नाम महात्मा ब्रह्मा ने कहे हैं। ३-५। आग में जलता हुआ, युद्ध में शत्रुओं से घिरा हुआ अथवा अत्यन्त दुःख में

द्वितीयं ब्रह्मचारिणी। तृतीयं चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम् ॥ ३ ॥ पञ्चमं स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनीति च। सप्तमं कालरात्रीति महागौरीति चाष्टमम् ॥ ४ ॥ नवमं सिद्धिदात्री च नवदुर्गाः प्रकीर्तिताः। उक्तान्येतानि नामानि ब्रह्मणैव महात्मना ॥ ५ ॥ अग्निना दह्यमानस्तु शत्रुमध्ये गतो रणे। विषमे दुर्गमे चैव भयार्त्ताः शरणं गताः ॥ ६ ॥

पड़कर डरे हुए जो मनुष्य इन नामों की शरण लेते हैं, अर्थात् इनमें से किसी का स्मरण करते हैं। ६। उनका कुछ भी अशुभ नहीं होता। युद्ध के संकट में भी उनका अमंगल

नहीं होता। जो दुःखित मनुष्य इन देवियों का स्मरण करता है, देवियाँ उसे दुःखित नहीं देख सकतीं और उसकी विपत्ति दूर कर देती हैं। ७। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक देवी का स्मरण करते हैं उनकी वृद्धि होती है। ८। अब सप्तमातृ का वर्णन करते हैं।

न तेषां जायते किञ्चिदशुभं रणसङ्कटे। नापदं तस्य पश्यामि शोकदुःखभयं न हि ॥ ७ ॥ यैस्तु भक्त्या स्मृता नूनं तेषां वृद्धिः प्रजायते। ये त्वां स्मरन्ति देवेशि रक्षसे तान्न संशयः ॥ ८ ॥ प्रेतसंस्था तु चामुण्डा वाराही महिषासना। ऐन्द्री गजसमारूढा वैष्णवी गरुडासना ॥ ९ ॥ माहेश्वरी वृषारूढा कौमारी शिखिवाहना। लक्ष्मीः पद्मासना देवी पद्महस्ता हरिप्रिया ॥ १० ॥ श्वेतरूपधरा

चामुण्डा प्रेत पर, वाराही महिष पर, ऐन्द्री हाथी पर, वैष्णवी गरुड़ पर, माहेश्वरी बैल पर, कौमारी मयूर पर और ब्राह्मी हंस पर सवार हैं तथा सब आभूषणों से भूषित हैं।

इनके सिवा अनेक प्रकार के आभूषणों तथा रत्नों से शोभित, रथों पर सवार, क्रोध में भरी हुई और भी देवियाँ हैं। अब देवियों के आयुध बताते हैं। शंख, चक्र, गदा, शक्ति, हल,

देवी ईश्वरी वृषवाहना। ब्राह्मी हंससमारूढा सर्वाभरणभूषिता॥ ११॥ इत्येता मातरः सर्वाः सर्वयोगसमन्विताः। नानाभरणशोभाढ्या नानारत्नोपशोभिताः॥ १२॥ दृश्यन्ते रथमारूढा देव्यः क्रोधसमाकुलाः। शङ्खं चक्रं गदां शक्तिं हलं च मुसलायुधम्॥ ११॥ खेटकं तोमरं चैव परशुं पाशमेव च। कुन्तायुधं त्रिशूलं च शार्ङ्गमायुधमुत्तमम्॥ १४॥ दैत्यानां देहनाशाय भक्तानामभयाय च।

मुसल, खेटक, तोमर, परशु, पाश, कुन्त, त्रिशूल और सर्वश्रेष्ठ शार्ङ्ग आयुध हैं। दैत्यों के नाश के लिए और भक्तों का भय दूर करने के लिए तथा देवताओं के हित के लिए,

ये सब आयुध धारण करती हैं। ८—१५। हे महाबले, हे महोत्साहे, हे महाभय का विनाश करनेवाली, हे दुःख में दर्शन देनेवाली, हे शत्रुओं का भय बढ़ानेवाली, हे देवि, मेरी रक्षा करो। ऐंद्री देवी पूर्व दिशा में मेरी रक्षा करें, अग्निरूपा देवी

धारयन्त्यायुधानीत्थं देवानां च हिताय वै ॥ १५ ॥ नमस्तेऽस्तु महारौद्रे महाघोरपराक्रमे । महाबले महोत्साहे महाभयविनाशिनि ॥ १६ ॥ त्राहि मां देवि दुष्प्रेक्ष्ये शत्रूणां भयवर्द्धिनि । प्राच्यां रक्षतु मामैन्द्री आग्नेय्यामग्निदेवता ॥ १७॥ दक्षिणेऽवतु वाराही नैर्ऋत्यां खड्गधारिणी । प्रतीच्यां वारुणी रक्षेद् वायव्यां मृगवाहिनी ॥ १८ ॥ उदीच्यां

अग्निकोण में रक्षा करें, हे वाराहि, तुम दक्षिण में रक्षा करो, खड्गधारिणी नैर्ऋति में रक्षा करें। वारुणी पश्चिम में, मृगवाहिनी वायव्य में, कौमारी उत्तर में और शूलधारिणी ईशान में रक्षा करें। हे ब्रह्माणि, ऊपर की ओर आप रक्षा करें और नीचे

की ओर वैष्णवी रक्षा करें। इसी प्रकार प्रेतवाहिनी चामुण्डा दशों दिशाओं में रक्षा करें। जया देवी मेरी रक्षा के लिए आगे और विजया पीछे स्थित रहें। १६-२०। अजिता बाईं ओर और अपराजिता दाहिनी ओर रक्षा करें। उद्योतिनी शिखा की रक्षा करें, उमा सिर पर स्थित होकर सिर की रक्षा करें, मालाधरी ललाट की

पातु कौमारी ऐशान्यां शूलधारिणी। ऊर्ध्वं ब्रह्माणि मे रक्षेदधस्ताद् वैष्णवी तथा ॥ १९ ॥ एवं दश दिशो रक्षेच्चामुण्डा शववाहना। जया मे चाग्रतः पातु विजया पातु पृष्ठतः ॥ २० ॥ अजिता वामपार्श्वे तु दक्षिणे चापराजिता। शिखामुद्योतिनी रक्षेदुमा मूर्ध्नि व्यवस्थिता ॥ २१ ॥ मालाधरी ललाटे च भ्रुवौ रक्षेद् यशस्विनी। त्रिनेत्रा च भ्रुवोर्मध्ये

और यशस्विनी भ्रुकुटियों की रक्षा करें। त्रिनेत्रा भौंहों के बीच की, यमघंटा नासिका के छिद्रों की, शंखिनी नेत्रों की और द्वारवासिनी कानों की रक्षा करें। कालिका कपोलों की, शांकरी कर्णमूल की, सुगन्धा नासिका की और चर्चिका ऊपर

के होठ की रक्षा करें। अमृतकला नीचे के होठ की, सरस्वती जिह्वा की, कौमारी दाँतों की और चण्डिका कंठ की रक्षा करें ॥२१-२४ ॥ घाँटी की चित्रघंटा, तालु की महामाया, ठोढी की कामाक्षी और वाणी की सर्वमंगला रक्षा करें। ग्रीवा की

यमघण्टा च नासिके ॥ २२ ॥ शङ्खिनी चक्षुषोर्मध्ये श्रोत्रयोर्द्वारवासिनी । कपोलौ कालिका रक्षेत्कर्णमूले तु शाङ्करी ॥ २३ ॥ नासिकायां सुगन्धा च उत्तरोष्ठे च चर्चिका । अधरे चामृतकला जिह्वायां च सरस्वती ॥ २४ ॥ दन्तान् रक्षतु कौमारी कण्ठदेशे तु चण्डिका । घण्टिकां चित्रघण्टा च महामाया च तालुके ॥ २५ ॥ कामाक्षी चिबुकं रक्षेद् वाचं मे सर्वमङ्गला ।

भद्रकाली, पृष्ठवंश की धनुर्धरी, कंठ के बाहर की नीलग्रीवा और नलिका की नलकूबरी रक्षा करें। दोनों कन्धों की खड्गिनी, भुजाओं की वज्रधारिणी, हाथों की दंडिनी

और अँगुलियों की अम्बिका रक्षा करें। हाथों के नखों की शूलेश्वरी, बगलों की नलेश्वरी और दोनों स्तनों की महादेवी रक्षा करें, जो मन का शोक दूर करनेवाली

ग्रीवायां भद्रकाली च पृष्ठवंशे धनुर्धरी ॥ २६ ॥ नीलग्रीवा बहिःकण्ठे नलिकां नलकूबरी । स्कन्धयोः खड्गिनी रक्षेद् बाहू मे वज्रधारिणी ॥ २७ ॥ हस्तयोर्दण्डिनी रक्षेदम्बिका चाङ्गुलीषु च । नखाञ्छूलेश्वरी रक्षेत्कुक्षौ रक्षेत्कुलेश्वरी ॥ २८ ॥ स्तनौ रक्षेन्महादेवी मनःशोकविनाशिनी । हृदये ललिता देवी उदरे शूलधारिणी ॥ २९ ॥ नाभौ च कामिनी रक्षेद् गुह्यं गुह्येश्वरी तथा । पूतना कामिका मेढ्रं गुदे महिषवाहिनी ॥ ३० ॥

हैं। ललिता देवी हृदय की, शूलधारिणी उदर की, कामिनी नाभि की और गुह्येश्वरी गुह्यस्थान की रक्षा करें। लिंग की भूतनाथा, गुदा की महिषवाहिनी, कटि की भगवती और दोनों घुटनों की विन्ध्यवासिनी रक्षा करें। महाबला जाँघों की

रक्षा करें, विनायकी घुटनों के बीच की रक्षा करें। २५-३१। नारसिंही गुल्फों की और मितौजसी पादपृष्ठ की रक्षा करें। श्रीधरी पैरों की अँगुलियों की, पातालवासिनी तलुओं की, दंष्ट्राकराली पैरों के नखों की और ऊर्ध्वकेशिनी केशों की रक्षा करें। कौबेरी

कट्यां भगवती रक्षेज्जानुनी विन्ध्यवासिनी। जङ्घे महाबला रक्षेत्सर्व-कामप्रदायिनी॥ ३१॥ गुल्फयोर्नारसिंही च पादपृष्ठे तु तैजसी। पादाङ्गुलीषु श्री रक्षेत्पादाधस्तलवासिनी॥ ३२॥ नखान् दंष्ट्राकराली च केशांश्चैवोर्ध्वकेशिनी। रोमकूपेषु कौबेरी त्वचं वागीश्वरी तथा॥ ३३॥ रक्तमज्जावसामांसान्यस्थिमेदांसि पार्वती। अन्त्राणि कालरात्रिश्च पित्तं च मुकुटेश्वरी॥ ३४॥ पद्मावती पद्मकोशे कफे चूडामणि-

रोएँ के छेदों की, वागीश्वरी त्वचा की और पार्वती रक्त, मज्जा, वसा, मांस, हड्डी तथा मेद की रक्षा करें। कालरात्री आँतों की, मुकुटेश्वरी पित्त की, पद्मावती पद्मकोश

की और चूणामणि कफ की रक्षा करें। ज्वालामुखी नखों के तेज की और अभेद्या सर्व-संधियों की रक्षा करें। ३२-३५। हे ब्राह्मणि, तुम वीर्य की रक्षा करो और छत्रेश्वरी छाया की रक्षा करें। हे धर्मचारिणि, तुम मेरे अहंकार, मन और बुद्धि की तथा

स्तथा। ज्वालामुखी नखज्वालामभेद्या सर्वसन्धिषु ॥ ३५॥ शुक्रं ब्रह्माणि मे रक्षेच्छायां छत्रेश्वरी तथा। अहंकारं मनो बुद्धिं रक्षेन्मे धर्मधारिणी ।। ३६ ।। प्राणापानौ तथा व्यानमुदानं च समानकम्। वज्रहस्ता च मे रक्षेत्प्राणं कल्याणशोभना ॥ ३७॥ रसे रूपे च गन्धे च शब्दे स्पर्शे च योगिनी। सत्त्वं रजस्तमश्चैव रक्षेन्नारायणी सदा ॥ ३८॥

प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान की रक्षा करो। चक्रिणी यश, कीर्ति और लक्ष्मी की सदा रक्षा करें। हे इन्द्राणि, तुम मेरे कुल की रक्षा करो और हे चण्डिके, तुम मेरे पशुओं की रक्षा करो। महालक्ष्मी पुत्रों की रक्षा करें, भैरवी स्त्री की रक्षा

करें, क्षेमकरी मार्ग की रक्षा करें, और सर्वव्यापिनी विजया सब प्रकार के भय से रक्षा करें। ३६-४१। जो स्थान रक्षाहीन हैं, अर्थात् कवच में नहीं कहे गये हैं, देवि, तुम पापनाशिनी और जयन्ती हो उन सबकी रक्षा करो। जो मनुष्य अपना कल्याण चाहे

आयु रक्षतु वाराही धर्मं रक्षतु वैष्णवी। यशः कीर्तिं च लक्ष्मीं च धनं विद्यां च चक्रिणी ॥ ३६ ॥ गोत्रमिन्द्राणि मे रक्षेत्पशून्मे रक्ष चण्डिके। पुत्रान् रक्षेन्महालक्ष्मीर्भार्यां रक्षतु भैरवी ॥ ४० ॥ पन्थानं सुपथा रक्षेन्मार्गं क्षेमकरी तथा। राजद्वारे महालक्ष्मीर्विजया सर्वतः स्थिता ॥ ४१ ॥ रक्षाहीनं तु यत्स्थानं वर्जितं कवचेन तु। तत्सर्वं रक्ष मे देवि जयन्ती

वह कवच के विना एक पद भी न चले, अर्थात् क्षण भर के लिये भी देवी को न भूले। मनुष्य देवी का स्मरण करता हुआ जहाँ जाता है वहाँ धन का लाभ, विजय और सब कामनाएँ सिद्ध होती हैं। वह मनुष्य जिस काम की चिन्ता करता है, वह काम अवश्य

सिद्ध होता है और उसी जन्म में अतुल ऐश्वर्य प्राप्त करता है ।४२-४४। कवच धारण करने से मनुष्य संग्राम में पराजित न होकर निर्भय हो जाता है और तीनों लोकों में पूज्य होता है। देवी का यह कवच देवताओं को भी दुर्लभ है। जो मनुष्य इसे श्रद्धा और

पापनाशिनी ॥ ४२ ॥ पदमेकं न गच्छेत्तु यदीच्छेच्छुभमात्मनः । कवचेनावृतो नित्यं यत्र यत्रैव गच्छति ॥ ४३ ॥ तत्र तत्रार्थलाभश्च विजयः सार्वकामिकः । यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम् । परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यते भूतले पुमान् ॥ ४४ ॥ निर्भयो जायते मर्त्यः संग्रामेष्वपराजितः । त्रैलोक्ये तु भवेत्पूज्यः कवचेनावृतः। पुमान् ॥ ४५ ॥ इदं तु देव्याः कवचं देवानामपि दुर्लभम्। यः पठेत्प्रयतो नित्यं त्रिसन्ध्यं

नियम से नित्य तीनों काल में पढ़ता है उसमें दैवी कला हो जाती है, और वह तीनों लोकों में अपराजित तथा अपमृत्यु से रहित होकर एक-सौ-बीस वर्ष जीता है ।४५-४७।

उसकी लूताविस्फोटक आदि सब व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं। स्थावर, जंगम और कृत्रिम विष, सब अभिचार पृथ्वी भर के मन्त्र, यन्त्र, भूचर, खेचर, जलचर और उपदेशिक जलचर, साथ ही उत्पन्न हुए और कुल में उत्पन्न हुए रोग तथा गंडमाला, डाकिनी, शाकिनी,

श्रद्धयान्वितः ॥ ४६ ॥ दैवी कला भवेत्तस्य त्रैलोक्येष्वपराजितः । जीवेद् वर्षशतं साग्रमपमृत्युविवर्जितः ॥ ४७॥ नश्यन्ति व्याधयः सर्वे लूताविस्फोटकादयः। स्थावरं जङ्गमं चैव कृत्रिमं चापि यद्विषम् ॥ ४८ ॥ अभिचाराणि सर्वाणि मन्त्रयन्त्राणि भूतले। भूचराः खेचराश्चैव जलजाश्चोपदेशिकाः ॥ ४९ ॥ सहजा कुलजा माला डाकिनी शाकिनी तथा । अन्तरिक्षचरा घोरा डाकिन्यश्च महाबलाः ॥ ५० ॥ ग्रहभूतपिशा-

अंतरिक्षचर और महाबलवाली घोर डाकिनियाँ, ग्रह, भूत, पिशाच, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, ब्रह्मराक्षस, वेताल, कूष्मांड और भैरव आदि उसको देखकर भाग जाते हैं। जिसके हृदय में कवच होता है उसके सम्मान की उन्नति होती है। यह कवच राजा के तेज को

बढ़ानेवाला है।४८-५२। जो मनुष्य कवच का पाठ करके सप्तशती का पाठ करता है उसका यश बढ़ता है और पृथ्वी भर में उसकी कीर्ति होती है। जब तक पृथ्वी पर पहाड़, वन

चाश्च यक्षगन्धर्वराक्षसाः। ब्रह्मराक्षसवेतालाः कूष्माण्डा भैरवादयः ॥५१॥
नश्यन्ति दर्शनात्तस्य कवचे हृदि संस्थिते। मानोन्नतिर्भवेद् राज्ञस्ते-
जोवृद्धिकरं परम् ॥ ५२ ॥ यशसा वर्द्धते सोऽपि कीर्तिमण्डितभूतले।
जपेत्सप्तशतीं चण्डीं कृत्वा तु कवचं पुरा ॥ ५३ ॥ यावद्भूमण्डलं धत्ते
सशैलवनकाननम्। तावत्तिष्ठति मेदिन्यां सन्ततिः पुत्रपौत्रिकी ॥ ५४ ॥
देहान्ते परमं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम्। प्राप्नोति पुरुषो नित्यं महा-
मायाप्रसादतः ॥ ५५ ॥ लभते परमं रूपं शिवेन सह मोदते ॐ॥ ५६ ॥

और वृक्ष आदि हैं तब तक उसकी पुत्र-पौत्रादि की सन्तति स्थित रहेगी। वह पुरुष मरने पर महामाया के प्रसाद से सर्वश्रेष्ठ स्थान को जाता है, जो देवताओं को भी दुर्लभ है तथा उत्तम रूप पाकर कल्याणकारी सुख से युक्त होता है ॥ ५३-५६ ॥

अथार्गलास्तोत्रम्

ॐ अस्य श्रीअर्गलास्तोत्रमन्त्रस्य विष्णुर्ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहालक्ष्मीर्देवता श्रीजगदम्बाप्रीतये सप्तशतीपाठाङ्गत्वेन जपे विनियोगः ॥

ॐ नमश्चण्डिकायै

मार्कण्डेय उवाच

ॐ जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी । दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते ॥ १ ॥ जय त्वं देवि चामुण्डे जय भूतार्तिहारिणि । जय सर्वगते देवि कालरात्रि नमोऽस्तु ते ॥ २ ॥ मधुकैटभविद्राविविधातृवरदे नमः ।

ॐ नमश्चण्डिकायै । जयन्ती, मंगला, काली, भद्रकाली, कपालिनी, दुर्गा, क्षमा, शिवा, धात्री, स्वाहा और स्वधारूपिणी देवी को नमस्कार है ॥ १ ॥ देवि चामुण्डे ! तुम्हारी जय हो । सम्पूर्ण प्राणियों की पीड़ा हरने वाली देवि तुम्हारी जय हो । सबमें व्याप्त रहने वाली देवि ! तुम्हारी जय हो । कालरात्रि तुम्हें नमस्कार हो ॥ २ ॥ हे

मधुकैटभनाशिनि, हे ब्रह्मा को वर देनेवाली, तुमको नमस्कार है। रूप दो, जय दो, यश दो और शत्रुओं का नाश करो ॥ ३ ॥ हे महिषासुरनाशिनि, हे वर देनेवाली, तुमको नमस्कार है। रूप दो, जय दो, यश दो और शत्रुओं का नाश करो ॥ ४ ॥ हे रक्तबीज-

रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ३ ॥ महिषासुर निर्णाशि भक्तानां सुखदे नमः। रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ४ ॥ रक्तबीजवधे देवि चण्डमुण्डविनाशिनि। रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ५ ॥ शुम्भस्यैव निशुम्भस्य धूम्राक्षस्य च मर्दिनि। रूपं देहि जयं देहि यशो देहि

विनाशिनि, हे चण्डमुण्डविनाशिनि, हे देवी, रूप दो, जय दो, यश दो और शत्रुओं का नाश करो॥ ५ ॥ शुम्भ एवं निशुम्भ तथा धूम्रलोचन का मर्दन करनेवाली देवि! तुम रूप दो, जय दो, यश दो और शत्रुओं का नाश करो ॥ ६ ॥ हे वन्दितचरणवाली, हे देवताओं

को सौभाग्य देनेवाली, रूप दो, जय दो, यश दो और शत्रुओं का नाश करो ॥ ७ ॥ हे अचिन्त्यरूप और चरितवाली, हे सर्वशत्रुविनाशिनि, रूप दो, जय दो, यश दो और शत्रुओं का नाश करो ॥ ८ ॥ पापों को दूर करनेवाली हे चण्डिके,

द्विषो जहि ॥ ६ ॥ वन्दिताङ्घ्रियुगे देवि सर्वसौभाग्यदायिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ७ ॥ अचिन्त्यरूप-
चरिते सर्वशत्रुविनाशिनि । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो
जहि ॥ ८ ॥ नतेभ्यः सर्वदा भक्त्या चण्डिके दुरितापहे ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ९ ॥ स्तुवद्भ्यो

सर्वदा भक्तिपूर्वक नम्र रहनेवाले मनुष्यों को और मुझ विनीत को रूप दो, जय दो, यश दो और शत्रुओं का नाश करो ॥ ९ ॥ हे चण्डिके, हे व्याधिनाशिनि, जो मनुष्य भक्ति-

पूर्वक तुम्हारी स्तुति करते हैं उनको रूप दो, जय दो, यश दो और उनके शत्रुओं का नाश करो ॥ १० ॥ हे चण्डिके, जो पुरुष हमेशा भक्ति से तुम्हारी पूजा करते हैं उनको

भक्तिपूर्वं त्वां चण्डिके व्याधिनाशिनि । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १० ॥ चण्डिके सततं ये त्वामर्चयन्तीह भक्तितः । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ११ ॥ देहि सौभाग्यमारोग्यं देहि मे परमं सुखम् । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १२ ॥ विधेहि द्विषतां नाशं विधेहि बलमुच्चकैः । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि

रूप दो, जय दो, यश दो और उनके शत्रुओं का नाश करो ॥ ११ ॥ हे देवि, मुझे सौभाग्य, आरोग्य और परम सुख दो, जय दो, रूप दो, यश दो और शत्रुओं का नाश करो ॥ १२ ॥ हे देवि, शत्रुओं का नाश करो और अधिक बल बढ़ाओ, रूप दो, जय

दो, यश दो और शत्रुओं का नाश करो ॥ १३ ॥ हे देवि, कल्याण करो और विपुल संपत्ति दो, रूप दो, जय दो, यश दो और शत्रुओं का नाश करो ॥ १४ ॥ हे देवताओं और दैत्यों के शिरोरत्नों से स्पर्शित चरणोंवाली, हे अम्बिके, रूप दो, जय दो, यश दो

द्विषो जहि ॥ १३ ॥ विधेहि देवि कल्याणं विधेहि परमां श्रियम् । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १४ ॥ सुरासुर-शिरोरत्ननिघृष्टचरणेऽम्बिके । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १५ ॥ विद्यावन्तं यशस्वन्तं लक्ष्मीवन्तं जनं कुरु । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १६ ॥ प्रचण्डदैत्य-दर्पघ्ने चण्डिके प्रणताय मे । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि

और शत्रुओं का नाश करो । १५ । अपने भक्त (मुझ) को विद्यावान्, यशस्वी और लक्ष्मीवान् करो, रूप दो, जय दो, यश दो और शत्रुओं का नाश करो ॥ १६ ॥ हे उग्र

दैत्यों का गर्व नष्ट करनेवाली, हे चण्डिके, मुझ विनीत को रूप दो, जय दो, यश दो और मेरे शत्रुओं का नाश करो॥ १७ ॥ हे चार भुजावाली, हे ब्रह्मा से स्तुति की

द्विषो जहि ॥ १७ ॥ चतुर्भुजे चतुर्वक्त्रसंस्तुते परमेश्वरि । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १८ ॥ कृष्णेन संस्तुते देवि शश्वद्भक्त्या सदाम्बिके । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १९ ॥ हिमाचलसुतानाथसंस्तुते परमेश्वरि । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ २० ॥ इन्द्राणीपति-

गई, हे परमेश्वरि, रूप दो, जय दो, यश दो और शत्रुओं का नाश करो ॥ १८ ॥ हे निरन्तर कृष्णजी से भक्तिपूर्वक स्तुति की गई, हे अम्बिके, हे देवि, रूप दो, जय दो, यश दो और शत्रुओं का नाश करो ॥ १९ ॥ हे शिवजी से पूजित परमेश्वरि, रूप

दो, जय दो, यश दो और शत्रुओं का नाश करो ॥२०॥ हे इन्द्र द्वारा सद्भाव से पूजित, हे परमेश्वरि, रूप दो, जय दो, यश दो और शत्रुओं का नाश करो । २१ । अपने प्रचण्ड

सद्भावपूजिते परमेश्वरि । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ २१ ॥ देवि प्रचण्डदोर्दण्डदैत्यदर्पविनाशिनि । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ २२ ॥ देवि भक्तजनोद्दामदत्तानन्दोदयेऽम्बिके । रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ २३ ॥ पत्नीं मनोरमां देहि मनोवृत्तानुसारिणीम् ।

भुजदण्डों से दैत्यों का अभिमान नष्ट करनेवाली हे देवि, रूप दो, जय दो, यश दो और शत्रुओं का नाश करो । २२ । हे भक्तजनों को अत्यन्त आनन्द देनेवाली अम्बिके, रूप दो, जय दो, यश दो और शत्रुओं का नाश करो । २३ । मेरी इच्छा के

अनुसार चलनेवाली, कठिन संसार-सागर से पार करनेवाली और अच्छे कुल में उत्पन्न

तारिणीं दुर्गसंसारसागरस्य कुलोद्भवाम् ॥ २४ ॥ इदं स्तोत्रं पठित्वा तु महास्तोत्रं पठेन्नरः । स तु सप्तशतीसंख्यावरमाप्नोति सम्पदाम् ॐ ॥ २५ ॥

इति अर्गलास्तोत्रं समाप्तम् ।

—:०:—

सुन्दरी स्त्री मुझे दो । २४ । जो मनुष्य इस स्तोत्र को पढ़कर सप्तशती-स्तोत्र को पढ़ता है वही सप्तशती के पाठ का श्रेष्ठ फल और सम्पत्ति प्राप्त करता है । २५ ।

—:०:—

अथ कीलकम्

ॐ अस्य श्रीकीलकमन्त्रस्य शिव ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहासरस्वती देवता, श्रीजगदम्बाप्रीत्यर्थं सप्तशतीपाठाङ्गत्वेन जपे विनियोगः ।

—:०:—

मार्कण्डेयजी कहते हैं—निर्मल ज्ञानस्वरूप, वेदत्रयीरूप, दिव्यचक्षु, कल्याण की प्राप्ति के कारणरूप, अर्धचन्द्र धारण करनेवाले महादेवजी को नमस्कार है । १ । सप्तशती स्तोत्र का पाठ सब मन्त्रों का निष्कीलन है, यह जानकर इसका पाठ करना चाहिए ।

ॐ नमश्चण्डिकायै ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॐ विशुद्धज्ञानदेहाय त्रिवेदीदिव्यचक्षुषे । श्रेयःप्राप्तिनिमित्ताय नमः सोमार्द्ध-धारिणे ॥ १ ॥ सर्वमेतद्विजानीयान्मन्त्राणामभिकीलकम् । सोऽपि क्षेममवाप्नोति सततं जाप्यतत्परः ॥ २ ॥ सिद्ध्यन्त्युच्चाटनादीनि

यद्यपि दूसरे मन्त्रों का जप करने से भी मनुष्यों का कल्याण होता है और जप करने-वालों के उच्चाटन आदि सब काम तथा वस्तुएँ सिद्ध होती हैं, किन्तु सप्तशती-स्तोत्र का

केवल पाठ करने से ही देवी प्रसन्न हो जाती है। इस स्तोत्र का पाठ करनेवाले को अन्य किसी मन्त्र अथवा औषध या साधन की आवश्यकता नहीं है, दूसरे मन्त्रों का जप किये बिना ही, केवल इस स्तोत्र के पाठ से उच्चाटन आदि सब अभीष्ट काम सिद्ध

वस्तूनि सकलान्यपि। एतेन स्तुवतां देवी स्तोत्रमात्रेण सिद्ध्यति ॥ ३ ॥ न मन्त्रो नौषधं तत्र न किञ्चिदपि विद्यते। विना जाप्येन सिद्ध्येत सर्वमुच्चाटनादिकम् ॥ ४ ॥ समग्राण्यपि सिद्ध्यन्ति लोकशङ्कामिमां हरः। कृत्वा निमन्त्रयामास सर्व-

हो जाते हैं। २–४। शिवजी को सन्देह हुआ कि मन्त्रों के जप तथा सप्तशती-स्तोत्र के पाठ से मनुष्यों के सब काम सिद्ध हो जायँगे, इसलिए उन्होंने मन्त्रों को कील दिया और मनुष्यों से कहा कि हम इनकी निष्कीलन-विधि बताते हैं, उस विधि के अनुसार

पाठ करने से इस स्तोत्र का पाठ शुभप्रद होगा । ५ । शिवजी ने चण्डिका-स्तोत्र को ही दूसरे मन्त्रों की अपेक्षा श्रेष्ठ अर्थात् सबका निचोड़ बताया है, क्योंकि इस स्तोत्र-पाठ के फल की कभी समाप्ति नहीं होती, किन्तु दूसरे मन्त्रों के जप के फल की

मेवमिदं शुभम् ॥ ५ ॥ स्तोत्रं वै चण्डिकायास्तु तच्च गुप्तं चकार सः । समाप्तिर्न च पुण्यस्य तां यथावन्नियन्त्रणाम् ॥ ६ ॥ सोऽपि क्षेममवाप्नोति सर्वमेवं न संशयः । कृष्णायां वा चतुर्दश्यामष्टम्यां वा समाहितः ॥ ७ ॥ ददाति प्रतिगृह्णाति नान्यथैषा प्रसीदति ।

समाप्ति हो जाती है, इसलिए उनकी न्यूनता यथार्थ है । ६ । दूसरे मन्त्रों का जप करनेवाला मनुष्य भी यदि इस स्तोत्र का पाठ करे तो निस्सन्देह उसका कल्याण होता है, क्योंकि दूसरे मन्त्रों का निष्कीलन करनेवाला यही स्तोत्र है । अब निष्कीलन-विधि बताते हैं । जो मनुष्य कृष्णपक्ष की अष्टमी या चतुर्दशी को एकाग्रचित्त होकर न्याय से उपार्जित अपना सब धन देवी को समर्पण कर देता है

और देवी की आज्ञा लेकर उनका प्रसादरूप वह धन ग्रहण करता है। फिर उसे धर्म-शास्त्रोक्त मार्ग से व्यय करता हुआ देवी के अधीन रहता है, उसके ऊपर देवी प्रसन्न होती है। इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है। इस प्रकार शिवजी ने सब मन्त्रों को

इत्थंरूपेण कीलेन महादेवेन कीलितम् ॥ ८ ॥ यो निष्कीलां विधायैनां नित्यं जपति संस्फुटम्। स सिद्धः स गणः सोऽपि गन्धर्वो जायते नरः ॥ ९ ॥ न चैवाप्यटतस्तस्य भयं क्वापीह जायते। नापमृत्युवशं याति मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ १० ॥ ज्ञात्वा

कील दिया है। ७–८। जो पुरुष निष्कीलन-विधि करके चण्डिका-स्तोत्र का स्पष्ट पाठ करता है वही सिद्ध होता है, वही देवी का गण होता है और वही संसार की रक्षा करने में समर्थ होता है। ९। वह संसार भर में चाहे जहाँ घूमे उसे कहीं डर नहीं रहता। वह अल्पायु नहीं होता, बल्कि बहुत दिनों तक जीवित रहकर मरने पर मोक्ष प्राप्त करता है। १०। इस कीलक को जानकर, उसका निष्कीलन करके पाठ करना

चाहिए, क्योंकि निष्कीलन किये विना पाठ का फल नहीं मिलता। इसलिए पण्डितों को चाहिए कि कीलक को जानकर और उसका निष्कीलन करके पाठ करें। ११। स्त्रियों में सौभाग्य आदि जो कुछ देख पड़ता है वह देवी का ही प्रसाद है। अत-

प्रारभ्य कुर्वीत न कुर्वाणो विनश्यति। ततो ज्ञात्वैव सम्पन्नमिदं प्रारभ्यते बुधैः ॥ ११ ॥ सौभाग्यादि च यत्किञ्चिद् दृश्यते ललनाजने। तत्सर्वं तत्प्रसादेन तेन जाप्यमिदं शुभम् ॥ १२ ॥ शनैस्तु जप्यमानेऽस्मिन् स्तोत्रे सम्पत्तिरुच्चकैः। भवत्येव सम-

एव कल्याण करनेवाले चण्डिका-स्तोत्र का पाठ करना सबका कर्तव्य है। १२। धीरे-धीरे पाठ करने से भी कुछ कल्याण होता है, किन्तु ऊँचे स्वर से पाठ करने पर पूर्णतया कल्याण होता है। इसलिए ऊँचे स्वर से ही पाठ करना चाहिए। १३। जिसकी कृपा

से ऐश्वर्य, सौभाग्य, आरोग्य, सम्पत्ति, शत्रुओं का विनाश और मोक्ष मिलता है, उस

ग्रापि ततः प्रारभ्यमेव तत् ॥१३॥ ऐश्वर्यं यत्प्रसादेन सौभाग्यारोग्य-सम्पदः। शत्रुहानिः परो मोक्षः स्तूयते सा न किं जनैः ॥ ॐ ॥१४॥

इति भगवत्याः कीलकस्तोत्रं समाप्तम् ।

देवी की स्तुति मनुष्य क्यों न करें, अर्थात् सबको करनी चाहिए ॥ १४ ॥

—:(०):—

अथ वेदोक्तं रात्रिसूक्तम्

विनियोगः

ॐ रात्रीत्याद्यष्टर्चस्य सूक्तस्य कुशिकः सौभरो रात्रिर्वा भारद्वाजो ऋषिः, रात्रिर्देवता, गायत्री छन्दः, देवीमाहात्म्यपाठे विनियोगः।

ॐ रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्यक्षभिः। विश्वा अधि श्रियोऽधित ॥ १ ॥ ओर्वप्रा अमर्त्या निवतो देव्युद्वतः। ज्योतिषा

ए रात्रिरूपा भगवती देवी, महत्तत्त्वादि रूप व्यापक इन्द्रियों से सब देशों में समस्त वस्तुओं को प्रकाशित तथा अज्ञानान्धकार को दूर करने वाली हैं। रात्रिरूपा भगवती अपने उत्पन्न किये हुये जगत् के जीवों के शुभाशुभ कर्मों को सावधानी पूर्वक विशेष रूप से देखती हैं और उनके अनुरूप फल की व्यवस्था करने के लिये समस्त विभूतियों को धारण करती हैं ॥ १ ॥

ये भगवती अमर्त्य हैं और चराचर जगत् को नीचे फैलने वाली लता पत्रादि को तथा ऊपर बढ़ने वाले वृक्षों को भी अपने में व्याप्त करके स्थित हैं, इतना ही नहीं ये ज्ञानात्मक ज्योति द्वारा समस्त प्राणियों के अज्ञानान्धकार का नाश कर देती हैं ॥ २ ॥

बाधते तमः॥ २ ॥ निरु स्वसारमस्कृतोषसं देव्यायती। अपेदु हासते तमः ॥ ३ ॥ सा नो, अद्य यस्या वयं नि ते यामन्नविक्ष्महि । वृक्षे न वसतिं वयः ॥ ४ ॥ नि ग्रामासो

ये रात्रि देवी जो परा चिच्छक्तिरूपिणी हैं स्वयं आविर्भूत होकर अपनी बहिन ब्रह्मविद्यामयी उषा देवी को प्रकट करती हैं, उस तेजस् प्रभाव से अविद्यामय अन्धकार स्वतः नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

ऐसी महिमामयी वे रात्रि देवी इस समय मुझ पर प्रसन्न हों, जिनके आगमन पर हम लोग अपने घरों में उसी प्रकार सुखपूर्वक शयन करते हैं, जैसे रात्रि के समय पक्षी वृक्षों पर स्वतः बनाये हुये घोसलों में सुख से सोते हैं ॥ ४ ॥

उस करुणामयी एवं आनन्ददायिनी माँ भगवती रात्रि देवी के गोद में समस्त ग्राम-वासी मनुष्य, पैरों से चलने वाले गाय घोड़े आदि पशु, नभचर-पंखों से उड़ने वाले पक्षी तथा पतंग आदि, किसी प्रयोजन से यात्रा करने वाले पथिक और बाज आदि भी सुखपूर्वक शयन करते हैं ॥ ५ ॥

अविक्षत नि पद्वन्तो नि पक्षिणः । नि श्येनासश्चिदर्थिनः ॥ ५ ॥
यावया वृक्यं वृकं यवय स्तेनमूर्म्ये । अथा नः सुतरा भव ॥ ६ ॥

हे रात्रिमयी चिच्छक्ति मोक्षदायिनि । तुम कृपा करके वासनामयी वृकी तथा पापमय वृक को हमसे अलग करो । काम, क्रोध, मद, लोभ आदि तस्कर समुदाय को भी दूर हटाओ । हमारे लिये सुखपूर्वक तरने योग्य हो जाओ अर्थात् मोक्षदायिनी एवं कल्याणकारिणी (सत् चित् आनन्द-ज्ञान्, भक्ति, वैराग्य की प्राप्ति कराने वाली) बन जाओ ॥ ६ ॥

हे उषा ! हे रात्रि की अधिष्ठात्री देवी ! समस्त विश्व में फैला हुआ यह अज्ञानमय काला अन्धकार मेरे निकट आ पहुँचा है। हे माँ तुम इसे ऋण की भाँति दूर करो। अर्थात् जिस प्रकार अपने प्रिय भक्तों को धन देकर ऋण से मुक्त करती हो, उसी प्रकार ज्ञान देकर इस अज्ञान को भी हटा दो ॥ ७ ॥

उप मा पेपिशत्तमः कृष्णं व्यक्तमस्थित । उषऋणेव यातय ॥ ७ ॥
उप ते गा इवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिवः । रात्रि स्तोमं न जिग्युषे ॥ ८ ॥

हे रात्रि देवी ! तुम दुधारू गौ के समान हो। मैं समीप में आ करके प्रार्थना आदि से माँ तुम्हें मैं अपने अनुकूल करता हूँ। परम व्योमस्वरूप परमात्मा की पुत्री ! तुम्हारी कृपा प्रसाद से मैं काम आदि शत्रुओं को जीत चुका हूँ, तुम स्तोम की भाँति मेरे इस हविष्य को भी ग्रहण करो ॥ ८ ॥

—:०:—

अथ तन्त्रोक्तं रात्रिसूक्तम्

ॐ विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम् । निद्रां
भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः ॥ १ ॥ त्वं स्वाहा त्वं स्वधा
त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका । सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा
मात्रात्मिका स्थिता ॥ २ ॥ अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या
विशेषतः । त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा ॥ ३ ॥
त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत् । त्वयैतत्पाल्यते देवि
त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा ॥ ४ ॥ विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा
च पालने । तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये ॥ ५ ॥
महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः । महामोहा च भवती

महादेवी महासुरी ॥ ६ ॥ प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी । कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा ॥ ७ ॥ त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा । लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च ॥ ८ ॥ खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा । शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डी परिघायुधा ॥ ९ ॥ सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी । परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ॥ १० ॥ यच्च किञ्चित् क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके । तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा ॥ ११ ॥ यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पात्यत्ति यो जगत् । सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ॥ १२ ॥ विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च । कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान्

भवेत् ॥ १३ ॥ सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता । मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ ॥ १४ ॥ प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु । बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ ॥ १५ ॥

इति रात्रि सूक्तम्

—:०:—

॥ अथ नवार्ण विधिः ॥

देव्याः कवचम्, अर्गलास्तोत्रम्, कीलकम्, वेदोक्तं रात्रिसूक्तम् तथा तन्त्रोक्तं रात्रिसूक्तम् का पाठ करने के पश्चात् निम्नाङ्कित रूप से नवार्ण मन्त्र के विनियोग, न्यास और ध्यानादि करें ।

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

विनियोग:

ॐ अस्य श्री नवार्णमन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः ऐं बीजम् ह्रीं शक्तिः क्लीं कीलकम् श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ।

इसे पढ़कर जल गिराये ।

निम्नाङ्कित न्यास वाक्यों में से एक-एक का उच्चारण करके दाहिने हाथ की अंगुलियों से क्रमशः सिर, मुख, हृदय, गुदा दोनों चरण तथा नाभि-अंङ्गों का स्पर्श करे ।

—:•:—

ऋष्यादिन्यासः

ब्रह्मविष्णुरुद्रऋषिभ्यो नमः शिरसि ।

(दाहिने हाथ की अंगुलियों से सिर का स्पर्श करें ।)

गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दोभ्यो नमः मुखे ।

(दाहिने हाथ की अंगुलियों से मुख का स्पर्श करें ।)

महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वती देवताभ्यो नमः हृदि ।

(दाहिने हाथ की अंगुलियों से हृदय का स्पर्श करें ।)

ऐं बीजाय नमः गुह्ये ।

(दाहिने हाथ की अंगुलियों से गुह्य स्थान का स्पर्श करें ।)

ह्रीं शक्तये नमः पादयोः ।

(दाहिने हाथ की अंगुलियों से दोनों पैरों का स्पर्श करें ।)

क्लीं कीलकाय नमः नाभौ ।

(दाहिने हाथ की अंगुलियों से नाभि का स्पर्श करें ।)

॥ 'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' ॥

इस मूलमन्त्र से हाथों की शुद्धि करके करन्यास करें ।

ॐ ऐं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।

(दोनों हाथों की तर्जनी अंगुलियों से दोनों अंगूठों का स्पर्श ।)

ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः ।

(दोनों हाथों के अँगूठों से दोनों तर्जनी अंगुलियों का स्पर्श ।)

ॐ क्लीं मध्यमाभ्यां नमः ।

(अँगूठों से मध्यमा अंगुलियों का स्पर्श ।)

ॐ चामुण्डायै अनामिकाभ्यां नमः ।

(अँगूठों से अनामिका अंगुलियों का स्पर्श ।)

ॐ विच्चे कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।

(अंगूठों से कनिष्ठिका अंगुलियों का स्पर्श ।)

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे करतलकर पृष्ठाभ्यां नमः ।

(हथेलियों और उनके पृष्ठ भागों का परस्पर स्पर्श करें ।)

हृदयादिन्यासः

ॐ ऐं हृदयाय नमः ।

(दाहिने हाथ की पाँचों अंगुलियों से हृदय का स्पर्श ।)

ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा ।

(दाहिने हाथ की पाँचों अंगुलियों से सिर का स्पर्श ।)

ॐ क्लीं शिखायै वषट् ।

(दाहिने हाथ की अंगुलियों से शिखा का स्पर्श ।)

ॐ चामुण्डायै कवचाय हुम् ।

(दाहिने हाथ की अंगुलियों से बायें कंधे का और बायें हाथ की अंगुलियों से दाहिने कंधे का एक साथ ही स्पर्श करें ।)

ॐ विच्चे नेत्र त्रयाय वौषट् ।

(दाहिने हाथ की अंगुलियों के अग्रभाग से दोनों नेत्रों तथा ललाट के मध्य भाग का स्पर्श करें ।)

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे अस्त्राय फट् ।

(इस वाक्य को पढ़कर दाहिने हाथ को सिर के ऊपर से बायीं ओर से पीछे की ओर ले जाकर दाहिनी ओर से आगे की ओर ले आये और तर्जनी तथा मध्यमा अंगुलियों से बायें हाथ की हथेली पर ताली बजाये ।)

॥ अक्षरन्यासः ॥

निम्नलिखित वाक्यों को पढ़कर क्रमशः शिखा, नेत्र, कर्ण आदि का दाहिने हाथ की अंगुलियों से स्पर्श करें ।

ॐ ऐं नमः शिखायाम् ।
ॐ क्लीं नमः वाम नेत्रे ।
ॐ मुं नमः वाम कर्णे ।
ॐ यैं नमः वाम नासा पुटे ।
ॐ ह्रीं नमः दक्षिणनेत्रे ।
ॐ चां नमः दक्षिण कर्णे ।
ॐ डां नमः दक्षिण नासापुटे ।
ॐ विं नमः मुखे ।
ॐ च्चें नमः गुह्ये ।

॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ॥

(इस मूल मन्त्र से आठ बार व्यापक दोनों हाथों से सिर से पैर तक के समस्त अङ्गों का स्पर्श करें ।)

॥ दिङ्न्यासः ॥

निम्नाङ्कित वाक्यों को पढ़कर दाहिने हाथ से प्रत्येक दिशा में चुटकी बजाते हुये न्यास करें :—

ॐ ऐं प्राच्यै नमः । ॐ ऐं आग्नेय्यै नमः ।
ॐ ह्रीं दक्षिणायै नमः । ॐ ह्रीं नैर्ऋत्यै नमः ।
ॐ क्लीं प्रतीच्यै नमः । ॐ क्लीं वायव्यै नमः ।
ॐ चामुण्डायै उदीच्यै नमः । ॐ चामुण्डायै ऐ शान्यै नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ऊर्ध्वायै नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे भूम्यै नमः ॥

ध्यानम्

खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम् । नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं

कैटभम् ॥ १ ॥ अक्षस्रक्परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुः कुण्डिकां दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम् । शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम् ॥ २ ॥ घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुः सायकं हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम् । गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महापूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम् ॥ ३ ॥

तदुपरान्त,

'ऐं ह्रीं अक्षमालिकायै नमः'

इस मन्त्र से माला की पूजा करके प्रार्थना करे—

ॐ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि ।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ॥

ॐ अविघ्नं कुरु माले त्वं गृह्णामि दक्षिणे करे।
जपकाले च सिद्ध्यर्थं प्रसीद मम सिद्धये॥

ॐ अक्षमालाधिपतये सुसिद्धिं देहि देहि सर्वमन्त्रार्थसाधिनि साधय साधय सर्वसिद्धिं परिकल्पय परिकल्पय मे स्वाहा।

तत्पश्चात्,

'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे'

इस मन्त्र का १०८ बार जप करे और—

गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरि॥

इस श्लोक को पढ़कर देवी के वामहस्त में जप निवेदन करे।

—:०:—

अथ सप्तशतीन्यासः

तत्पश्चात सप्तशती के विनियोग, न्यास और ध्यान करना चाहिये । न्यास की प्रणाली पूर्ववत् है—

प्रथममध्यमोत्तरचरित्राणां ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि, नन्दाशाकम्भरीभीमाः शक्तयः, रक्तदन्तिकादुर्गाभ्रामर्यो बीजानि, अग्निवायुसूर्यास्तत्त्वानि, ऋग्यजुःसामवेदा ध्यानानि, सकलकामनासिद्धये श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीदेवताप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ।

ॐ खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ।
शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा ॥ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ॥
ॐ शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके ।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च ॥ तर्जनीभ्यां नमः ॥

ॐ प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे ।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ॥ मध्यमाभ्यां नमः ॥
ॐ सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते ।
यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम् ॥ अनामिकाभ्यां नमः ॥
ॐ खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके ।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ॥ कनिष्ठिकाभ्यां नमः ॥
ॐ सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥ करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ॥

खड्गिनी शूलिनी घोरा०—हृदयाय नमः ।
शूलेन पाहि नो देवि०—शिरसे स्वाहा ।
प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च०—शिखायै वषट् ।

सौम्यानि यानि रूपाणि०—कवचाय हुम् ।

खड्गशूलगदादीनि०—नेत्रत्रयाय वौषट् ।

सर्वस्वरूपे सर्वेशे०—अस्त्राय फट् ।

ध्यानम

विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम् । हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे ॥

॥ श्रीदुर्गायै नमः ॥

अथ श्रीदुर्गासप्तशती

प्रथमोऽध्यायः

त्रिकालदर्शी मेधा ऋषि का राजा सुरथ और समाधि को भगवती की महिमा बताते हुए मधु-कैटभ-वध का प्रसङ्ग सुनाना

विनियोगः

ॐ प्रथमचरित्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, महाकाली देवता, गायत्री छन्दः, नन्दा शक्तिः, रक्तदन्तिका बीजम्, अग्निस्तत्त्वम्, ऋग्वेदः स्वरूपम्, श्रीमहाकालीप्रीत्यर्थे प्रथमचरित्र-जपे विनियोगः ।

प्रथम चरित्र के ब्रह्मा ऋषि, महाकाली देवता, गायत्री छन्द, नन्दा शक्ति, रक्त-दन्तिका बीज, अग्नि तत्त्व और ऋग्वेद स्वरूप हैं। श्रीमहाकाली देवता की प्रसन्नता के लिये प्रथम चरित्र के जप में विनियोग किया जाता है।

ध्यानम्

खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम्। नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम्॥

ॐ नमश्चण्डिकायै

'ॐ' ऐं मार्कण्डेय उवाच॥ १॥

सावर्णिः सूर्यतनयो यो मनुः कथ्यतेऽष्टमः। निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद् गदतो मम॥ २॥ महामायानुभावेन यथा

भगवान विष्णु के शयन करने पर मधु कैटभ को मारने हेतु कमलजन्मा ब्रह्माजी ने जिसकी स्तुति की थी, उन महाकाली देवी को मैं भजता हूँ। वे अपने दस हाथों में खड्ग, चक्र, गदा, बाण, धनुष, परिघ, शूल, भुशुण्डी, मस्तक और शङ्ख धारण करती हैं। त्रिनेत्र युक्त हैं। वे दिव्य आभूषणों से विभूषित अङ्गों से व्याप्त हैं। माँ काली दस मुख और दस पैरों से युक्त नीलमणि के समान शरीर की कान्ति वाली हैं।

मन्वन्तराधिपः। स बभूव महाभागः सावर्णिस्तनयो रवेः ॥ ३ ॥
स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं चैत्रवंशसमुद्भवः। सुरथो नाम राजाभूत्समस्ते

मार्कण्डेय कहते हैं—सूर्य के पुत्र सावर्णि (सूर्य की छाया से उत्पन्न), जिनको आठवाँ मनु कहते हैं, उनकी उत्पत्ति सुनो, मैं विस्तार के साथ कहता हूँ ॥ १-२ ॥ महामाया भगवती की कृपा से सूर्य के पुत्र महाभाग सावर्णि जिस प्रकार मन्वन्तर के स्वामी हुए सो सुनो ॥ ३ ॥ स्वारोचिष मन्वन्तर में, चैत्र के वंश में उत्पन्न सुरथ सम्पूर्ण

पृथ्वीमंडल के राजा हुए ।। ४ ।। राजा सुरथ पुत्रों के समान अपनी प्रजा का पालन करते थे । उसी समय कोलाविध्वंसी राजा (जिन्होंने कोलापुर का विध्वंस किया था)

क्षितिमण्डले ॥ ४ ॥ तस्य पालयतः सम्यक् प्रजाः पुत्रानिवौरसान् । बभूवुः शत्रवो भूपाः कोलाविध्वंसिनस्तदा ॥ ५ ॥ तस्य तैरभवद् युद्धमतिप्रबलदण्डिनः । न्यूनैरपि स तैर्युद्धे कोलाविध्वंसिभिर्जितः ॥ ६ ॥ ततः स्वपुरमायातो निजदेशाधिपोऽभवत् । आक्रान्तः स महाभागस्तैस्तदा प्रबलारिभिः ॥ ७ ॥

उनके शत्रु हो गये ।। ५ ।। महाराज सुरथ के साथ उनका युद्ध हुआ । यद्यपि कोलाविध्वंसी राजाओं के साथ सेना कम थी और सुरथ के साथ बहुत बड़ी सेना थी, तो भी राजा सुरथ युद्ध में हार गये ।। ६ ।। प्रबल शत्रुओं से हारकर, महाराज सुरथ अपने नगर में आकर अपने देश का राज्य करने लगे ।। ७ ।। किन्तु वहाँ भी बलवान् दुष्ट मन्त्रियों ने

उनको दुर्बल जानकर खजाना और सेना सब अपने अधीन कर लिया ।। ८ ।। तब राजा सुरथ राज्यच्युत होकर, शिकार के बहाने, घोड़े पर चढ़कर, अकेले वने वन को चले गये ।। ९ ।। वहाँ उन्होंने मेधा ऋषि का आश्रम देखा । वह आश्रम मुनि तथा उनके शिष्यों से शोभित

अमात्यैर्बलिभिर्दुष्टैर्दुर्बलस्य दुरात्मभिः । कोशो बलं चापहृतं तत्रापि स्वपुरे ततः ॥ ८ ॥ ततो मृगयाव्याजेन हृतस्वाम्यः स भूपतिः । एकाकी हयमारुह्य जगाम गहनं वनम् ॥ ९ ॥ स तत्राश्रममद्राक्षीद् द्विजवर्यस्य मेधसः । प्रशान्तश्वापदाकीर्णं मुनि-शिष्योपशोभितम् ॥ १० ॥ तस्थौ कंचित्स कालं च मुनिना

था । वहाँ रहनेवाले हिंसक जीव किसी की हिंसा नहीं करते थे ।। १० ।। मुनि ने राजा का बड़ा सत्कार किया और राजा इधर-उधर विचरते हुए कुछ दिनों तक उस आश्रम

में रहे ॥ ११ ॥ किन्तु वहाँ राजा को अपने नगर और प्रजा की ममता होने लगी । वे सोचने लगे कि जिस नगर का मेरे पूर्वजों ने पालन किया था, वह अब मुझसे छूट गया ॥१२॥ नहीं मालूम, मेरे दुराचारी नौकर-चाकर धर्म से उसकी रक्षा करते हैं या

तेन सत्कृतः । इतश्चेतश्च विचरंस्तस्मिन्मुनिवराश्रमे ॥ ११ ॥ सोऽचिन्तयत्तदा तत्र ममत्वाकृष्ट चेतनः । मत्पूर्वैः पालितं पूर्वं मया हीनं पुरं हि तत् ॥ १२ ॥ मद्भृत्यैस्तैरसद्वृत्तैर्धर्मतः पाल्यते न वा । न जाने स प्रधानो मे शूरहस्ती सदामदः ॥ १३ ॥ मम वैरिवशं यातः कान् भोगानुपलप्स्यते । ये ममानुगता नित्यं

नहीं । मेरा मतवाला शूर हाथी शत्रुओं के वश में पड़कर न जाने किन भोगों को भोगता होगा । जो मेरे नौकर मेरी प्रसन्नता से धन और भोजन पाते थे, वे अब दूसरे राजाओं की सेवा करते होंगे । जो धन बड़े कष्ट से संचित किया गया था उसे अब फजूल खर्च

करनेवाले मेरे नौकर-चाकर खर्च करके नष्ट कर देंगे। इसी प्रकार राजा सुरथ और भी बहुत-सी चिन्ताएँ करने लगे ॥ १३-१६ ॥ एक दिन राजा को आश्रम के पास एक

प्रसादधनभोजनैः ॥ १४ ॥ अनुवृत्तिं ध्रुवं तेऽद्य कुर्वन्त्यन्यमहीभृताम्। असम्यग्व्ययशीलैस्तैः कुर्वद्भिः सततं व्ययम् ॥ १५ ॥ संचितः सोऽतिदुःखेन क्षयं कोशो गमिष्यति। एतच्चान्यच्च सततं चिन्तयामास पार्थिवः ॥ १६ ॥ तत्र विप्राश्रमाभ्याशे वैश्यमेकं ददर्श सः। स पृष्टस्तेन कस्त्वं भो हेतुश्चागमनेऽत्र कः ॥ १७ ॥ सशोक इव कस्मात्त्वं दुर्मना इव लक्ष्यसे। इत्याकर्ण्य वचस्तस्य

वैश्य देख पड़ा। राजा ने उससे पूछा—तुम कौन हो, और यहाँ आने का क्या कारण है? ॥ १७ ॥ तुम चिन्तित और उदास देख पड़ते हो, इसका क्या कारण है? राजा

का यह विनम्र वचन सुनकर वैश्य ने नम्रता से उत्तर दिया ॥१८-१९॥ वैश्य बोला— मैं वैश्य हूँ, धनिकों के कुल में उत्पन्न हुआ हूँ, मेरा नाम समाधि है ॥ २०-२१ ॥ मेरे

भूपतेः प्रणयोदितम् ॥ १८ ॥ प्रत्युवाच स तं वश्यः प्रश्रयावनतो नृपम् ॥ १९ ॥

वैश्य उवाच ॥ २० ॥

समाधिर्नाम वैश्योऽहमुत्पन्नो धनिनां कुले ॥ २१ ॥ पुत्रदारैर्निरस्तश्च धनलोभादसाधुभिः । विहीनश्च धनैर्दारैः पुत्रैरादाय

दुष्ट स्त्री-पुत्रों ने धन के लोभ से मेरा सर्वस्व छीनकर मुझे घर से निकाल दिया है, और मुझ निर्धन को मेरे मित्र और भाई-बन्धुओं ने भी त्याग दिया है, इसलिए मैं दुखित होकर वन को चला आया हूँ। अब यहाँ मुझे स्त्री, पुत्रों और बन्धुओं की कुशल

के हाल नहीं मिलते । नहीं मालूम, उनके घरों में कुशल है या नहीं, और मेरे पुत्रों के आचरण अब अच्छे हैं या नहीं ॥२२-२५॥ राजा ने कहा—जिन लोभी स्त्री-पुत्रादिकों

मे धनम् ॥ २२ ॥ वनमभ्यागतो दुःखी निरस्तश्चाप्तबन्धुभिः । सोऽहं न वेद्मि पुत्राणां कुशलाकुशलात्मिकाम् ॥ २३ ॥ प्रवृत्तिं स्वजनानां च दाराणां चात्र संस्थितः । किं नु तेषां गृहे क्षेममक्षेमं किं नु साम्प्रतम् ॥ २४ ॥ कथं ते किं नु सद्वृत्ता दुर्वृत्ताः किं नु मे सुताः ॥ २५ ॥

राजोवाच ॥ २६ ॥

यैर्निरस्तो भवाँल्लुब्धैः पुत्रदारादिभिर्धनैः ॥ २७ ॥ तेषु किं भवतः स्नेहमनुबध्नाति मानसम् ॥ २८ ॥

ने धन के लोभ से तुमको घर से निकाल दिया, उनका स्नेह अब तुम्हारे चित्त में क्या बना है ? ॥२६-२८॥ वैश्य ने उत्तर दिया—जो बात आप कहते हैं वही मैं भी सोचता

हूँ, किन्तु क्या करूँ, मेरे चित्त में निठुरता नहीं आती। जिन लोगों ने धन के लोभ से पिता, पति और मित्र के स्नेह को त्यागकर मुझे घर से निकाल दिया, उन्हीं के स्नेह में मेरा मन फँसा है। हे महामते, यह जानकर भी मेरा चित्त उन्हीं अवगुणी बन्धुओं

वैश्य उवाच ॥ २९ ॥

एवमेतद्यथा प्राह भवानस्मद्गतं वचः ॥ ३० ॥ किं करोमि न बध्नाति मम निष्ठुरतां मनः। यैः संत्यज्य पितृस्नेहं धनलुब्धै-र्निराकृतः ॥ ३१ ॥ पतिस्वजनहार्दं च हार्दि तेष्वेव मे मनः। किमेतन्नाभिजानामि जानन्नपि महामते ॥ ३२ ॥ यत्प्रेमप्रवणं चित्तं विगुणेष्वपि बन्धुषु। तेषां कृते मे निःश्वासो दौर्मनस्यं च जायते ॥ ३३ ॥ करोमि किं यन्न मनस्तेष्वप्रीतिषु निष्ठुरम् ॥ ३४ ॥

में क्यों प्रेम करता है, यह बात मेरी समझ में नहीं आती। उनके लिए मुझे शोक और चिन्ता होती है; पर क्या करूँ, उन निर्मोहियों के प्रति मेरा मन कठोर नहीं होता ॥२९–३४॥ मार्कण्डेय कहते हैं—हे विप्र, उसके बाद दोनों मिलकर मुनि के पास

गये ॥३५–३६॥ समाधि वैश्य और महाराज सुरथ मुनि से न्यायपूर्वक यथोचित संभाषण करके बैठ गये । राजा और वैश्य अपने विषय में कुछ बातें करने लगे ॥३७–३८॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ ३५ ॥

ततस्तौ सहितौ विप्र तं मुनिं समुपस्थितौ ॥ ३६ ॥ समाधिर्नाम वैश्योऽसौ स च पार्थिवसत्तमः । कृत्वा तु तौ यथान्यायं यथार्हं तेन संविदम् ॥ ३७ ॥ उपविष्टौ कथाः काश्चिच्चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ ॥ ३८ ॥

राजोवाच ॥ ३९ ॥

भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छाम्येकं वदस्व तत् ॥ ४० ॥ दुःखाय यन्मे

उसके बाद राजा ने मुनि से कहा—भगवन्, मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ, सो आप बताइए ॥३९–४०॥ मेरा मन मेरे वश में नहीं है, इसलिए मुझे बड़ा दुःख मिल रहा है ।

बात यह है कि मुझे अपने राज्य, नौकर-चाकर, हाथी-घोड़ा और खजाना आदि में बड़ी ममता रहती है। यद्यपि मैं जानता हूँ कि अब उन सबसे अलग हो गया हूँ, उनमें प्रीति रखने से दुःख होगा, तो भी अज्ञानी की तरह मेरा चित्त उन्हीं में फँसा रहता है।

मनसः स्वचित्तायत्ततां विना। ममत्वं गतराज्यस्य राज्याङ्गेष्व-खिलेष्वपि ॥ ४१ ॥ जानतोऽपि यथाज्ञस्य किमेतन्मुनिसत्तम। अयं च निकृतः पुत्रैर्दारैर्भृत्यैस्तथोज्झितः ॥ ४२ ॥ स्वजनेन च संत्यक्तस्तेषु हार्दी तथाप्यति। एवमेष तथाहं च द्वावप्यत्यन्त-दुःखितौ ॥ ४३ ॥ दृष्टदोषेऽपि विषये ममत्वाकृष्टमानसौ। तत्किमे-

इसका क्या कारण है? यह जो मेरे साथ वैश्य है, इसे भी इसके बेटे, स्त्री-कुटुम्बियों और भाई-बन्धुओं ने घर से निकाल दिया है, परन्तु इतने पर भी चित्त में उनका स्नेह बना है। हम दोनों इसी विषय में बहुत दुःखित हैं। ४१–४३। यद्यपि उन लोगों की

दुष्टता जानते हैं तो भी उनकी ममता हम लोगों के चित्त से नहीं जाती। हे महाभाग, इसका क्या कारण है कि हम लोग इन बातों को समझते हुए भी मूर्खों की तरह मोह

तन्महाभाग यन्मोहो ज्ञानिनोरपि ॥ ४४ ॥ ममास्य च भवत्येषा विवेकान्धस्य मूढता ॥ ४५ ॥

ऋषिरुवाच ॥ ४६ ॥

ज्ञानमस्ति समस्तस्य जन्तोर्विषयगोचरे ॥ ४७ ॥ विषयश्च महाभाग याति चैवं पृथक् पृथक् । दिवान्धाः प्राणिनः केचिद्रात्रा-वन्धास्तथापरे ॥ ४८ ॥ केचिद्दिवा तथा रात्रौ प्राणिनस्तुल्य-

में फँसे हैं। मोह तो अज्ञानी मनुष्यों को होना चाहिए, हम लोग ज्ञानवान् होकर क्यों मूर्खता करते हैं? ॥ ४४–४५ ॥ महाराज सुरथ का यह प्रश्न सुनकर मेधा ऋषि बोले—

महाराज, विषयों (रूप-रस आदि) के समझने का ज्ञान तो सभी प्राणियों को है और विषय भी सबके अलग-अलग हैं। बहुत-से प्राणी दिन में अन्धे रहते हैं, कोई रात में नहीं देखते, बहुतों को दिन-रात में बराबर सूझता है और बहुत-से प्राणियों को दिन

दृष्टयः। ज्ञानिनो मनुजाः सत्यं किं तु ते न हि केवलम् ॥ ४९ ॥
यतो हि ज्ञानिनः सर्वे पशुपक्षिमृगादयः। ज्ञानं च तन्मनुष्याणां यत्तेषां मृगपक्षिणाम् ॥ ५० ॥ मनुष्याणां च यत्तेषां तुल्यमन्यत्त-थोभयोः। ज्ञानेऽपि सति पश्यैतान् पतङ्गाञ्छावचञ्चुषु ॥ ५१ ॥ कणमोक्षादृतान्मोहात्पीड्यमानानपि क्षुधा। मानुषा मनुजव्याघ्र साभिलाषाः सुतान् प्रति ॥ ५२ ॥ लोभात्प्रत्युपकाराय नन्वेतान्

रात में कभी नहीं सूझता। मनुष्य ज्ञानवान् होते हैं सही, किन्तु केवल मनुष्य ही ज्ञानी नहीं हैं, पशु-पक्षी और मृग आदिकों को भी ज्ञान होता है। विषयों का ज्ञान जैसा

मनुष्यों को है वैसा ही पशु-पक्षियों को भी है। इसलिए साधारण ज्ञान में पशु-पक्षी भी मनुष्यों के समान ही हैं। देखो, पक्षी भूख से पीड़ित रहने पर भी और बच्चों के खाने से हमारी भूख न जायगी, यह जानते हुए भी ममता के वश होकर अपना आहार बच्चों

किं न पश्यति। तथापि ममतावर्ते मोहगर्ते निपातिताः ॥ ५३ ॥ महामायाप्रभावेण संसारस्थितिकारिणा। तन्नात्र विस्मयः कार्यो योगनिद्रा जगत्पतेः ॥ ५४ ॥ महामाया हरेश्चैषा तया संमोह्यते जगत्। ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ॥ ५५ ॥

की चोंच में दे देते हैं और आप भूखे रह जाते हैं। महाराज, मनुष्य भी उपकार की आशा से पुत्रों का मोह करते हैं। क्या ये बातें तुम नहीं देखते हो ? संसार का पालन करनेवाले विष्णु की महामाया के प्रभाव से मनुष्य ज्ञानवान् होने पर भी मोह में फँसे

रहते हैं। इसमें कुछ आश्चर्य न करना चाहिए; क्योंकि जगत्पति भगवान् विष्णु की योगनिद्रा महामाया में सम्पूर्ण जगत् मोहित है। वह महामाया देवी भगवती ज्ञानियों के भी चित्त खींचकर मोह में फँसा देती है। वह भगवती इस चराचर जगत् को

बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति। तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम् ॥ ५६ ॥ सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये। सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी ॥ ५७ ॥ संसारबन्ध-हेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी ॥ ५८ ॥

उत्पन्न करती है, और वही प्रसन्न होकर, वरदान देकर, मनुष्यों को मुक्ति देती है। वह भगवती उत्कृष्ट ज्ञानस्वरूप, मुक्ति का कारण और सनातनी है। वही भगवती संसार के बन्धन का कारण और सब ईश्वरों की ईश्वरी है ॥ ४६-५८ ॥ यह

सुनकर राजा सुरथ ने पूछा—भगवन् जिसे आप महामाया कहते हैं, वह भगवती कौन है ? वह कैसे उत्पन्न हुई और उसके कर्म क्या है ? हे ब्रह्मन्, मैं उसका स्वरूप, उत्पत्ति और स्वभाव आपसे सुना चाहता हूँ। ऋषि ने कहा—वह भगवती जगन्मूर्ति

राजोवाच ॥ ५९ ॥

भगवन् का हि सा देवी महामायेति यां भवान् ॥ ६० ॥ ब्रवीति कथमुत्पन्ना सा कर्मास्याश्च किं द्विज । यत्प्रभावा च सा देवी यत्स्वरूपा यदुद्भवा ॥ ६१ ॥ तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदां वर ॥ ६२ ॥

और नित्या है, यह सम्पूर्ण जगत् उसी का बनाया हुआ है, तो भी भक्तों के हित के लिए अनेक प्रकार से उसकी उत्पत्ति हुई है, सो मैं कहता हूँ, सुनो—जब देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए वह उत्पन्न होती है तब नित्या होने पर भी वह उत्पन्ना कह-

लाती है। कल्प के अन्त में जब जगत् जलमय हो गया और विष्णु भगवान् शेषशय्या पर सो गये तब उनके कान के मैल से मधु और कैटभ नाम के दो भयानक असुर उत्पन्न

ऋषिरुवाच ॥ ६३ ॥

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम् ॥ ६४ ॥ तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम। देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा ॥ ६५ ॥ उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते। योगनिद्रां यदा विष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते ॥ ६६ ॥ आस्तीर्य शेषमभजत्कल्पान्ते भगवान् प्रभुः। तदा द्वावसुरौ घोरौ विख्यातौ

होकर ब्रह्मा को मारने दौड़े। विष्णु भगवान् की नाभि में फूले हुए कमल पर बैठे हुए ब्रह्मा ने उन दोनों उग्र असुरों को देखकर, और जनार्दन विष्णु को सोया हुआ जान-

कर उनको जगाने के लिए, उनके नेत्रों में जो योगनिद्रा प्राप्त थीं, एकाग्रचित्त से उनकी स्तुति करने लगे। ब्रह्मा ने योगनिद्रा, विश्वेश्वरी, जगद्धात्री, स्थितिसंहारकारिणी,

मधुकैटभौ॥ ६७॥ विष्णुकर्णमलोद्भूतौ हन्तुं ब्रह्माणमुद्यतौ। स नाभि-कमले विष्णोः स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः॥ ६८॥ दृष्ट्वा तावसुरौ चोग्रौ प्रसुप्तं च जनार्दनम्। तुष्टाव योगनिद्रां तामेकाग्रहृदयस्थितः॥ ६९॥ विबोधनार्थाय हरेर्हरिनेत्रकृतालयाम्। विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थिति-संहारकारिणीम्॥ ७०॥ निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः॥७१॥

विष्णु के तेज की अनुपम मूर्ति भगवती की इस प्रकार स्तुति की॥ ५९-७१॥ ब्रह्मा ने कहा—हे भगवती, स्वाहा, स्वधा और वषट्काररूपिणी आप ही हैं। स्वररूपिणी और

सुधा आप ही हैं। हे अविनाशिनि, हे नित्ये, तीन प्रकार की मात्रा (ह्रस्व, दीर्घ, लुप्त अथवा अकार, उकार, मकार-प्रणवरूप) आप ही हैं। अर्धमात्रारूपिणी होकर आप स्थित हैं। आप नित्या हैं। स्वर की सहायता विना जिनका विशेषरूप से उच्चारण नहीं

ब्रह्मोवाच ॥ ७२ ॥

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका ॥ ७३ ॥ सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधामात्रात्मिका स्थिता। अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः ॥ ७४ ॥ त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा। त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत् ॥ ७५ ॥

हो सकता, वह व्यंजनरूपिणी आप ही हैं ॥ ७२-७४ ॥ आप ही सावित्री हैं। हे देवि, आप ही सबकी माता हैं, आप ही इस विश्व को उत्पन्न करती हैं और आप ही धारण करती हैं ॥७५॥ आप ही पालन करती हैं और हे देवि, आप ही भक्षण कर लेती हैं।

हे जगन्मये, संसार की सृष्टि करते समय आप सृष्टिरूप, पालन करने के समय स्थिति-रूप और विनाश करने के समय संहार-रूप धारण करती हैं। हे देवि, महाविद्या, महामाया, महामेधा, महास्मृति, महामोहा, महादेवी और महासुरी आप ही हैं। सम्पूर्ण

त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा। विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने॥ ७६॥ तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये। महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः॥ ७७॥ महामोहा च भवती महादेवी महासुरी। प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुण-त्रयविभाविनी॥ ७८॥ कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा। त्वं

जगत् की त्रिगुणमयी (सतोगुणी, तमोगुणी और रजोगुणी) प्रकृति आप ही हैं॥७६-७८॥ भयावनी कालरात्रि महारात्रि और मोहरात्रि आप ही हैं। श्री (लक्ष्मीरूप), ईश्वरी

(ऐश्वर्ययुक्त), और ह्री (लज्जाबीज) बोधलक्षणा-बुद्धि, लज्जा, तुष्टि, पुष्टि, शान्ति और क्षान्ति भी आप ही हैं। खड्ग, शूल, गदा, चक्र, शंख, धनुष, बाण, भुशुण्डी, परिघ और एक हाथ में मुण्ड आप धारण करती हैं। आप सौम्या और सौम्यतरा हैं तथा सब सुन्दर

श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा ॥ ७९ ॥ लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च। खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ॥ ८० ॥ शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा। सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी ॥ ८१ ॥ परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी। यच्च किंचित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वा-

वस्तुओं से बढ़कर सुन्दरी हैं ॥ ७९-८१ ॥ आप ब्रह्मा आदि सब देवताओं से श्रेष्ठ और परमेश्वरी हैं। हे अखिलात्मिके, जगत् में सत् और असत् जितनी वस्तुएँ

हैं, उनमें जो शक्ति है, वह आप ही है। फिर आपकी स्तुति कैसे की जा सकती है। आपने जगत् की उत्पत्ति, पालन और विनाश करनेवाले भगवान् विष्णु को भी निद्रा के वश कर दिया। अब आपकी स्तुति कौन कर सकता है। मुझको और विष्णु तथा

खिलात्मिके ॥ ८२ ॥ तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा। यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पात्यत्ति यो जगत् ॥ ८३ ॥ सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः। विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च ॥ ८४ ॥ कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत्। सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि

महादेव को आपने शरीर धारण करा दिया (अर्थात् शरीरधारी ममता में फँस जाते हैं, इसलिए उनमें आपकी स्तुति करने की सामर्थ्य नहीं रह जाती और जो शरीरधारी नहीं

हैं, वे मुक्त हो गये; वे आपकी स्तुति कैसे करेंगे) तो आपकी स्तुति करने में सामर्थ्य किसकी है। हे देवि, आपके उदार-प्रभाव (माहात्म्य) से ही आपकी स्तुति होती है ॥ ८२-८५ ॥ आप इन दोनों दुर्धर्ष मधु-कैटभ असुरों को मोह उत्पन्न कीजिए और

संस्तुता ॥ ८५ ॥ मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ। प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु ॥ ८६ ॥ बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ ॥ ८७ ॥

जगत् के स्वामी अच्युत भगवान् विष्णु को शीघ्र जगाकर इन महाअसुरों को मारने के लिए प्रेरित कीजिए ॥८६-८७॥ मेधा ऋषि कहते हैं—महाराज, ब्रह्मा ने जब इस प्रकार तामसी देवी की स्तुति की, तब वह महामाया विष्णु भगवान् को जगाने के लिए और

मधु-कैटभ का विनाश करने के लिए भगवान् के नेत्र, मुख, नासिका, बाहु, हृदय और छाती से निकलकर ब्रह्मा को दर्शन देने के लिए खड़ी हो गईं। योगनिद्रा महामाया के निकलने से भगवान् विष्णु शेषशय्या पर उठ बैठे और उस एकार्णव में उन दोनों असुरों

ऋषिरुवाच ॥ ८८ ॥

एवं स्तुता तदा देवी तामसी तत्र वेधसा ॥ ८९ ॥ विष्णोः प्रबोधनार्थाय निहन्तुं मधुकैटभौ । नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्तथोरसः ॥ ९० ॥ निर्गम्य दर्शने तस्थौ ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । उत्तस्थौ च जगन्नाथस्तया मुक्तो जनार्दनः ॥ ९१ ॥ एकार्णवेऽहि-

को देखने लगे। महापराक्रमी असुरों ने भी उनको देखा ॥ ८८-९२ ॥ क्रोध से लाल-लाल आँखें किये, ब्रह्मा को खा जाने के लिए उद्यत, उन दुष्टों को देखकर, विष्णु भगवान् उठकर उनसे युद्ध करने लगे ॥ ९३ ॥ पाँच हजार वर्ष उनसे बाहु-युद्ध हुआ। उसके

बाद बल से उन्मत्त मधु-कैटभ महामाया से मोहित होकर विष्णु से बोले—हम तुम्हारे युद्ध से बहुत प्रसन्न हुए, तुम हमसे वर माँगो ।। ९४-९५ ।। भगवान् विष्णु ने कहा—

शयनात्ततः स ददृशे च तौ । मधुकैटभौ दुरात्मानावतिवीर्य-पराक्रमौ ॥ ६२ ॥ क्रोधरक्तेक्षणावत्तुं ब्रह्माणं जनितोद्यमौ । समुत्थाय ततस्ताभ्यां युयुधे भगवान् हरिः ॥ ६३ ॥ पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुप्रहरणो विभुः । तावप्यतिबलोन्मत्तौ महामायाविमोहितौ ॥६४॥ उक्तवन्तौ वरोऽस्मत्तो व्रियतामिति केशवम् ॥ ६५ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ ६६ ॥

भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि ॥ ६७ ॥ किमन्येन वरेणात्र एतावद्धि वृतं मम ॥ ६८ ॥

जो तुम दोनों मुझ पर प्रसन्न हो, तो मैं यह वर माँगता हूँ कि मेरे हाथ से तुम्हारी मृत्यु हो और कोई वर मुझे न चाहिए । इतने से ही मेरा प्रयोजन है ।। ९६-९८ ।। मेधा

ऋषि कहते हैं—हे सुरथ, जब वे दोनों इस प्रकार भगवान् विष्णु से वंचित हुए, तब वे सम्पूर्ण जगत् को जलमय देखकर बोले—जहाँ पृथ्वी पानी में डूबी न हो वहाँ

ऋषिरुवाच ॥ ९९ ॥

वञ्चिताभ्यामिति तदा सर्वमापोमयं जगत् ॥ १०० ॥
विलोक्य ताभ्यां गदितो भगवान् कमलेक्षणः । आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता ॥ १०१ ॥

ऋषिरुवाच ॥ १०२ ॥

तथेत्युक्त्वा भगवता शङ्खचक्रगदाभृता । कृत्वा चक्रेण वै

हमको मारो ॥ ९९-१०१ ॥ ऋषि कहते हैं—मधु-कैटभ के यह कहने पर शंख-चक्र-गदाधारी विष्णु ने "अच्छा" कहकर उन दोनों के सिर अपनी जाँघ अथवा पेड़ू

(जघन का अर्थ पेड़ू भी है) पर रखकर चक्र से काट डाला ॥ १०२-१०३ ॥ इस

च्छिन्ने जघने शिरसी तयोः ॥ १०३ ॥ एवमेषा समुत्पन्ना ब्रह्मणा संस्तुता स्वयम् । प्रभावमस्या देव्यास्तु भूयः शृणु वदामि ते ॥ ऐंॐ ॥ १०४ ॥

प्रकार ब्रह्मा के स्तुति करने पर वह देवी स्वयं उत्पन्न हुई । अब और भी उसका प्रभाव कहता हूँ, सुनो ॥ १०४ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये मधुकैटभवधो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

उवाच १४ अर्द्ध० २४ श्लोकाः ६ मं० १०४

—:०:—

द्वितीयोऽध्यायः

देवताओं के तेज से देवी का प्रादुर्भाव और महिषासुर की सेना का वध

विनियोगः

ॐ मध्यमचरित्रस्य विष्णुर्ऋषिर्महालक्ष्मीर्देवताउष्णिक् छन्दः शाकम्भरी शक्तिः दुर्गा बीजं वायुस्तत्त्वं यजुर्वेदः स्वरूपं श्रीमहालक्ष्मीप्रीत्यर्थं मध्यमचरित्रजपे विनियोगः ।

ॐ मध्यम चरित्र के विष्णु ऋषि, महालक्ष्मी देवता, उष्णिक् छन्द, शाकम्भरी शक्ति, दुर्गा बीज, वायु तत्त्व और यजुर्वेद स्वरूप है । श्रीमहालक्ष्मी की प्रसन्नता के लिये मध्यम चरित्र के पाठ में इसका विनियोग है ।

ध्यानम्

ॐअक्षस्त्रक्परशुंगदेषुकुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकां दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम् । शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां सेवे सैरभिमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम् ॥

मैं कमल के आसन पर विराजमान, प्रसन्न मुखवाली महिषासुर मर्दिनी श्री भगवती महालक्ष्मी की स्तुति करता हूँ। जो अपने हाथों में अक्षमाला, फरसा, गदा, बाण, वज्र, पद्म, धनुष, कुण्डिका, दण्ड, शक्ति, खड्ग, ढाल, शङ्ख, घण्टा, मधुपात्र, शूल, पाश और चक्र धारण करती हैं।

मेधा ऋषि कहते हैं—राजन्, प्राचीन समय में असुरों के राजा महिषासुर और देवताओं के राजा इन्द्र से सौ वर्ष युद्ध हुआ ॥ १-२ ॥ उस युद्ध में बलवान् असुरों ने देवताओं को जीत लिया और महिषासुर इन्द्र बन बैठा ॥ ३ ॥ देवता परास्त होकर प्रजापति ब्रह्मा

ॐ ह्रीं ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

देवासुरमभूद्युद्धं पूर्णमब्दशतं पुरा । महिषेऽसुराणामधिपे देवानां च पुरन्दरे ॥ २ ॥ तत्रासुरैर्महावीर्यैर्देवसैन्यं पराजितम् । जित्वा च सकलान् देवानिन्द्रोऽभून्महिषासुरः ॥ ३ ॥ ततः पराजिता देवाः पद्मयोनिं प्रजापतिम् । पुरस्कृत्य गतास्तत्र यत्रेशगरुडध्वजौ ॥ ४ ॥ यथावृत्तं तयोस्तद्वन्महिषासुरचेष्टितम् । त्रिदशाः

के पास गये और ब्रह्मा को साथ लेकर जहाँ भगवान् विष्णु और महादेव थे, वहाँ गये ॥ ४ ॥ देवताओं ने उनसे युद्ध का सब वृत्तान्त, जिस प्रकार महिषासुर विजयी

होकर इन्द्र हुआ और देवता परास्त हुए, विस्तार के साथ कहा ॥ ५ ॥ देवताओं ने कहा—भगवन्, महिषासुर ने सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्र, वायु, अग्नि, यम और वरुण आदि सब देवताओं के अधिकार छीन लिया है और उनको स्वर्ग से निकाल दिया है । अब देवता

कथयामासुर्देवाभिभवविस्तरम् ॥ ५ ॥ सूर्येन्द्राग्न्यनिलेन्दूनां यमस्य वरुणस्य च । अन्येषां चाधिकारान् स स्वयमेवाधितिष्ठति ॥ ६ ॥ स्वर्गान्निराकृताः सर्वे तेन देवगणा भुवि । विचरन्ति यथा मर्त्या महिषेण दुरात्मना ॥ ७ ॥ एतद्वः कथितं सर्वममरारिविचेष्टितम् । शरणं वः प्रपन्नाः स्मो वधस्तस्य विचिन्त्यताम् ॥ ८ ॥

मनुष्यों की तरह पृथ्वी पर घूमते हैं ॥ ६-७ ॥ भगवन्, महिषासुर ने जो उपद्रव किया है, वह हम लोगों ने आपसे निवेदन किया । हम लोग आपकी शरण में आये हैं । आप उसके मारने का उपाय सोचिए ॥ ८ ॥ देवताओं की यह प्रार्थना सुनकर भगवान् विष्णु

और महादेव को बड़ा क्रोध हुआ। क्रोध से उनकी भौंहें चढ़ गई और मुँह तमतमा गया ॥ ९ ॥ अत्यन्त कुपित भगवान् विष्णु के मुँह से एक बहुत बड़ा तेज निकला। उसी प्रकार ब्रह्मा और महादेव के भी मुँह से तेज निकला ॥ १० ॥ इन्द्र आदि जितने

इत्थं निशम्य देवानां वचांसि मधुसूदनः । चकार कोपं शम्भुश्च भ्रुकुटीकुटिलाननौ ॥ ९ ॥ ततोऽतिकोपपूर्णस्य चक्रिणो वदनात्ततः । निश्चक्राम महत्तेजो ब्रह्मणः शंकरस्य च ॥ १० ॥ अन्येषां चैव देवानां शक्रादीनां शरीरतः । निर्गतं सुमहत्तेजस्तच्चैक्यं समगच्छत ॥ ११ ॥ अतीव तेजसः कूटं ज्वलन्तमिव पर्वतम् ।

देवता थे उनकी देह से भी तेज निकला और वह सब इकट्ठा हो गया ॥ ११ ॥ देवताओं ने देखा कि वह तेज-पुंज प्रज्वलित पहाड़ के समान हो गया और उसका प्रकाश सब

दिशाओं में फैल गया ॥ १२ ॥ फिर वही अतुल तेज, जो देवताओं की देह से निकल-कर एकत्र हुआ था, एक स्त्री का रूप बन गया और उसका प्रकाश तीनों लोकों में फैल गया ॥ १३ ॥ शिव के तेज से उस स्त्री का मुँह, यम के तेज से सिर के बाल, विष्णु के

ददृशुस्ते सुरास्तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ॥ १२ ॥ अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम् । एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा ॥ १३ ॥ यदभूच्छाम्भवं तेजस्तेनाजायत तन्मुखम् । याम्येन चाभवन् केशा बाहवो विष्णुतेजसा ॥ १४ ॥ सौम्येन स्तनयोर्युग्मं मध्यं चैन्द्रेण चाभवत् । वारुणेन च जङ्घोरू नितम्बस्तेजसा भुवः ॥ १५ ॥ ब्रह्मणस्तेजसा पादौ तदङ्गुल्योऽर्कतेजसा । वसूनां

तेज से भुजाएँ, चन्द्रमा के तेज से दोनों स्तन, इन्द्र के तेज से देह का मध्य भाग, वरुण के तेज से जाँघें और पृथ्वी के तेज से उसके नितम्ब बन गये ॥ १४-१५ ॥ ब्रह्मा के तेज से

दोनों पैर, सूर्य के तेज से पैरों की अँगुलियाँ, वसुओं के तेज से हाथों की अँगुलियाँ, कुबेर के तेज से नाक, प्रजापति के तेज से दाँत, अग्नि के तेज से तीन आँखें, दोनों सन्ध्याओं के तेज से भौंहें और वायु के तेज से दो कान बन गये। इस प्रकार देवताओं के तेज से

च कराङ्गुल्यः कौबेरेण च नासिका ॥ १६ ॥ तस्यास्तु दन्ताः सम्भूताः प्राजापत्येन तेजसा। नयनत्रितयं जज्ञे तथा पावक-तेजसा ॥ १७ ॥ भ्रुवौ च संध्ययोस्तेजः श्रवणावनिलस्य च। अन्येषां चैव देवानां सम्भवस्तेजसां शिवा ॥ १८ ॥ ततः समस्त-देवानां तेजोराशिसमुद्भवाम्। तां विलोक्य मुदं प्रापुरमरा महिषार्दिताः ॥१९॥ शूलं शूलाद्विनिष्कृष्य ददौ तस्यै पिनाकधृक्।

शिवा देवी उत्पन्न हुईं ॥ १६-१८ ॥ देवताओं के तेज-पुंज से उत्पन्न उस देवी को देखकर महिषासुर से पीड़ित देवता बड़े प्रसन्न हुए ॥ १९ ॥ उसके बाद शिवजी ने अपने त्रिशूल से

एक दूसरा त्रिशूल निकालकर उस देवी को दे दिया, विष्णु ने अपने चक्र से एक चक्र उत्पन्न करके दिया ॥ २० ॥ इसी प्रकार वरुण ने शंख, अग्नि ने शक्ति, पवन ने धनुष और बाणों से भरा हुआ तरकस दिया ॥ २१ ॥ देवराज इन्द्र ने अपने वज्र से

चक्रं च दत्तवान् कृष्णः समुत्पाद्य स्वचक्रतः ॥ २० ॥ शङ्खं च वरुणः शक्तिं ददौ तस्यै हुताशनः । मारुतो दत्तवांश्चापं बाणपूर्णे तथेषुधी ॥ २१ ॥ वज्रमिन्द्रः समुत्पाद्य कुलिशादमराधिपः । ददौ तस्यै सहस्राक्षो घण्टामैरावताद् गजात् ॥ २२ ॥ कालदण्डाद्यमो दण्डं पाशं चाम्बुपतिर्ददौ । प्रजापतिश्चाक्षमालां ददौ ब्रह्मा

वज्र उत्पन्न करके दिया और ऐरावत हाथी से घंटा निकालकर दे दिया ॥ २२ ॥ यम ने दंड से दंड निकालकर और वरुण ने पाश से पाश निकालकर दिया । प्रजापति

ने रुद्राक्ष की माला और ब्रह्मा ने कमंडलु दिया ॥ २३ ॥ सूर्य ने देवी के रोमकूपों में अपनी किरणें दे दीं, काल ने ढाल और चमकती हुई तलवार दी ॥ २४ ॥ समुद्र ने एक बहुत अच्छा हार, दो नये वस्त्र, दिव्य चूड़ामणि, दोनों कानों के कुंडल, कंकण,

कमण्डलुम् ॥ २३ ॥ समस्तरोमकूपेषु निजरश्मीन् दिवाकरः ।
कालश्च दत्तवान् खड्गं तस्याश्चर्म च निर्मलम् ॥ २४ ॥ क्षीरोद-
श्चामलं हारमजरे च तथाम्बरे । चूडामणिं तथा दिव्यं कुण्डले
कटकानि च ॥ २५ ॥ अर्धचन्द्रं तथा शुभ्रं केयूरान् सर्वबाहुषु ।
नूपुरौ विमलौ तद्वद् ग्रैवेयकमनुत्तमम् ॥ २६ ॥ अङ्गुलीयकरत्नानि

अर्धचन्द्र के समान ललाट का भूषण, सब भुजाओं के विजायठ, पैरों के नूपुर, गले का उत्तम हार और सब अँगुलियों के लिए जड़ाऊ अँगूठियाँ दीं। विश्वकर्मा ने एक

अच्छा फरसा, अभेद्य कवच और अनेक प्रकार के अस्त्र दिये। समुद्र ने सिर और गले में पहनने के लिए कमल के फूलों की माला और हाथ में रखने के लिए एक बहुत

समस्तास्वङ्गुलीषु च। विश्वकर्मा ददौ तस्यै परशुं चाति-निर्मलम् ॥ २७ ॥ अस्त्राण्यनेकरूपाणि तथाभेद्यं च दंशनम्। अम्लानपंङ्कजां मालां शिरस्युरसि चापराम् ॥ २८ ॥ अददज्जलधि-स्तस्यै पङ्कजं चातिशोभनम्। हिमवान् वाहनं सिंहं रत्नानि विविधानि च ॥ २९ ॥ ददावशून्यं सुरया पानपात्रं धनाधिपः।

सुन्दर कमल दिया। हिमवान् पर्वत ने सवारी के लिए एक सिंह दिया और अनेक प्रकार के रत्न दिये ॥ २५-२९ ॥ कुबेर ने मधु से भरा हुआ एक पानपात्र दिया।

पृथ्वी को धारण करनेवाले नागराज शेष ने रत्नों से भूषित नागहार दिया । इसी प्रकार अन्य देवताओं ने भी आभूषण और अस्त्र-शस्त्र देकर देवी का सम्मान किया । तब वह देवी खिलखिलाकर हँसी और बड़े जोर से गरजी । उसके गरजने का भयानक

शेषश्च सर्वनागेशो महामणिविभूषितम् ॥ ३० ॥ नागहारं ददौ तस्यै धत्ते यः पृथिवीमिमाम् । अन्यैरपि सुरैर्देवी भूषणैरा-युधैस्तथा ॥ ३१ ॥ सम्मानिता ननादोच्चैः साट्टहासं मुहुर्मुहुः । तस्या नादेन घोरेण कृत्स्नमापूरितं नभः ॥ ३२ ॥ अमायताति-महता प्रतिशब्दो महानभूत । चुक्षुभुः सकला लोकाः समुद्राश्च

शब्द आकाश में फैल गया ॥ ३०-३२ ॥ उस शब्द की प्रतिध्वनि सब लोकों में फैल गई और सर्वत्र हलचल मच गई । समुद्र काँपने लगे, पृथ्वी डगमगाने लगी और पर्वत

हिलने लगे। देवता प्रसन्न होकर "सिंहवाहिनी देवी की जय" बोलने लगे ॥ ३३-३४ ॥ मुनि लोग बड़ी भक्ति से सिर झुकाकर देवी की स्तुति करने लगे। तीनों लोकों में यह हलचल देखकर असुरों की सेना अस्त्र-शस्त्र लेकर युद्ध के लिए तैयार हो गई।

चकम्पिरे ॥ ३३ ॥ चचाल वसुधा चेलुः सकलाश्च महीधराः। जयेति देवाश्च मुदा तामूचुः सिंहवाहिनीम् ॥ ३४ ॥ तुष्टुवुर्मुनय-श्चैनां भक्तिनम्रात्ममूर्तयः। दृष्टवा समस्तं संक्षुब्धं त्रैलोक्यम-मरारयः ॥ ३५ ॥ संनद्धाखिलसैन्यास्ते समुत्तस्थुरुदायुधाः। आः किमेतदिति क्रोधादाभाष्य महिषासुरः ॥ ३६ ॥ अभ्यधावत तं

महिषासुर उस शब्द को सुनकर बड़े क्रोध से "यह क्या है" कहकर असुरों के साथ, जिधर से गरजने का शब्द आता था उसी ओर दौड़ा, और वहाँ जाकर अपने तेज

से तीनों लोकों को प्रकाशित करती हुई देवी को देखा ॥ ३५-३७ ॥ उस देवी के चलने से पृथ्वी दबी जा रही थी। उसके किरीट आकाश को छू रहे थे। उसके धनुष की ज्या के शब्द से पाताल आदि नीचे के सब लोक काँप रहे थे ॥ ३८ ॥ वह

शब्दमशेषैरसुरैर्वृतः। स ददर्श ततो देवीं व्याप्तलोकत्रयां त्विषा ॥३७॥ पादाक्रान्त्या नतभुवं किरीटोल्लिखिताम्बराम्। क्षोभिताशेषपातालां धनुर्ज्यानिःस्वनेन ताम् ॥ ३८ ॥ दिशो भुजसहस्रेण समन्ताद् व्याप्य संस्थिताम्। ततः प्रववृते युद्धं तया देव्या सुरद्विषाम् ॥ ३९ ॥ शस्त्रास्त्रैर्बहुधा मुक्तैरादीपितदिगन्तरम्। महिषासुरसेनानीश्चि-

देवी अपनी हजार भुजाएँ सब दिशाओं में फैलाये खड़ी थी। उसके साथ असुरों का युद्ध होने लगा ॥ ३९ ॥ अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र चलने लगे। उनकी चमक से सब दिशाएँ प्रकाशित हो गईं। महिषासुर के सेनापति महाअसुर चिक्षुर और चामर

शूरवीर असुरों की चतुरंगिणी सेना लेकर युद्ध करने लगे। उदग्र नाम का असुर साठ हजार रथ अपने साथ लेकर युद्ध करने लगा ॥ ४०-४१ ॥ महाहनु नाम का असुर एक करोड़ सेना लेकर देवी के साथ लड़ने लगा और महासुर असिलोमा पाँच

क्षुराख्यो महासुरः ॥ ४० ॥ युयुधे चामरश्चान्यैश्चतुरङ्गबलान्वितः । रथानामयुतैः षड्भिरुदग्राख्यो महासुरः ॥ ४१ ॥ अयुध्यतायुतानां च सहस्रेण महाहनुः । पञ्चाशद्भिश्च नियुतैरसिलोमा महासुरः ॥४२॥ अयुतानां शतैः षड्भिर्बाष्कलो युयुधे रणे । गजवाजिसहस्रौघैरनेकैः परिवारितः ॥ ४३ ॥ वृतो रथानां कोट्या च युद्धे तस्मिन्नयुध्यत ।

करोड़ सैनिक लेकर युद्ध में आया ॥ ४२ ॥ वाष्कल नामक असुर साठ लाख रथ और असंख्य हाथी-घोड़ों की सेना लेकर युद्ध करने लगा ॥ ४३ ॥ बिडाल नामक

असुर एक करोड़ पाँच लाख रथ साथ लेकर युद्ध करने लगा ॥ ४४ ॥ और भी बहुत-से असुर दस-दस हजार रथ और हाथी-घोड़े लेकर देवी से युद्ध करने लगे ॥ ४५ ॥ महिषा-

बिडालाख्योऽयुतानां च पञ्चाशद्भिरथायुतैः ॥ ४४ ॥ युयुधे संयुगे तत्र रथानां परिवारितः। अन्ये च तत्रायुतशो रथनागहयैर्वृताः ॥ ४५ ॥ युयुधुः संयुगे देव्या सह तत्र महासुराः। कोटिकोटिसहस्रैस्तु रथानां दन्तिनां तथा ॥ ४६ ॥ हयानां च वृतो युद्धे तत्राभून्महिषासुरः। तोमरैर्भिन्दिपालैश्च शक्तिभिर्मुसलैस्तथा ॥ ४७ ॥ युयुधुः संयुगे देव्या खड्गैः परशुपट्टिशैः। केचिच्च चिक्षिपुः शक्तीः

सुर भी करोड़ों रथ, घोड़े और हाथी लेकर युद्धभूमि में आया। असुरों की सेना तोमर, भिन्दिपाल, शक्ति, मुसल, खड्ग, परशु और पट्टिश आदि शस्त्रों से युद्ध करने लगी।

कोई शक्ति और कोई पाश फेंककर देवी से युद्ध करते थे ॥ ४६-४८ ॥ कोई-कोई असुर खड्ग लेकर देवी को मारने दौड़े। देवी ने उन असुरों के अस्त्र-शस्त्र खेल की तरह अपने अस्त्रों से काटकर खंड-खंड कर दिये और देवी के मुँह पर क्लेश और क्रोध

केचित्पाशांस्तथापरे ॥ ४८ ॥ देवीं खड्गप्रहारैस्तु ते तां हन्तुं प्रचक्रमुः । सापि देवी ततस्तानि शस्त्राण्यस्त्राणि चण्डिका ॥ ४९ ॥ लीलयैव प्रचिच्छेद निजशस्त्रास्त्रवर्षिणी । अनायस्ताननना देवी स्तूयमाना सुरर्षिभिः ॥ ५० ॥ मुमोचासुरदेहेषु शस्त्राण्यस्त्राणि

का विकार न हुआ। यह देखकर देवता और ऋषि उनकी स्तुति करने लगे ॥ ४९-५० ॥ उसके बाद देवी उन असुरों पर अस्त्र-शस्त्र का प्रहार करने लगीं। उनका वाहन सिंह भी कुपित होकर गर्दन के बाल हिलाता हुआ उसी प्रकार सेना में विचरने लगा,

जैसे वन में आग दौड़ती है। उसी समय अम्बिका देवी की श्वास से लाखों गण उत्पन्न हो गये। देवी की शक्ति से उत्पन्न होकर, परशु, भिन्दिपाल तलवार, और पट्टिश से असुरों का विनाश करने लगे तथा ढोल, मृदंग और शंख बजाने लगे। देवी

चेश्वरी। सोऽपि क्रुद्धो धुतसटो देव्या वाहनकेशरी ॥ ५१ ॥
चचारासुरसैन्येषु वनेष्विव हुताशनः। निःश्वासान् मुमुचे यांश्च
युध्यमाना रणेऽम्बिका ॥ ५२ ॥ त एव सद्यः सम्भूता गणाः
शतसहस्रशः। युयुधुस्ते परशुभिर्भिन्दिपालासिपट्टिशैः ॥ ५३ ॥
नाशयन्तोऽसुरगणान् देवीशक्त्युपबृंहिताः। अवादयन्त पटहान्
गणाः शङ्खांस्तथापरे ॥ ५४ ॥ मृदङ्गांश्च तथैवान्ये तस्मिन् युद्ध-

ने त्रिशूल, गदा और शक्ति बरसाकर तथा खड्ग आदि का प्रहार करके सैकड़ों असुरों को मार डाला। बहुत-से असुरों को घंटा के शब्द से मोहित करके पृथ्वी पर गिरा

दिया ॥ ५१-५६ ॥ कितने ही असुरों को पाश में बाँधकर घसीट लिया और बहुतों को तीक्ष्ण खड्ग से काट डाला ॥ ५७ ॥ कितने ही दानव देवी की गदा के

महोत्सवे । ततो देवी त्रिशूलेन गदया शक्तिवृष्टिभिः ॥ ५५ ॥ खड्गादिभिश्च शतशो निजघान महासुरान् । पातयामास चैवान्यान् घण्टास्वनविमोहितान् ॥ ५६ ॥ असुरान् भुवि पाशेन बद्ध्वा चान्यानकर्षयत् । केचिद् द्विधा कृतास्तीक्ष्णैः खड्गपातै-स्तथापरे ॥ ५७ ॥ विपोथिता निपातेन गदया भुवि शेरते । वेमुश्च केचिद्रुधिरं मुसलेन भृशं हताः ॥ ५८ ॥ केचिन्निपतिता भूमौ भिन्नाः

प्रहार से पृथ्वी पर गिरकर मर गये । कोई-कोई मुसल के प्रहार से घायल होकर रुधिर का वमन करने लगे ॥ ५८ ॥ बहुत से असुर छाती में शूल लगने से और

बहुत-से बाणों के प्रहार से रणभूमि में गिरकर मर गये ॥ ५९ ॥ देवताओं को पीड़ित करनेवाले असुर बाज पक्षी की तरह पृथ्वी पर गिरकर मरने लगे। बहुतों की भुजाएँ कट गईं और बहुतों के गले कट गये ॥ ६० ॥ कितनों के सिर कट गये,

शूलेन वक्षसि। निरन्तराः शरौघेण कृताः केचिद्रणाजिरे ॥ ५९ ॥ श्येनानुकारिणः प्राणान् मुमुचुस्त्रिदशार्दनाः। केषांचिद् बाहवश्छिन्नाश्छिन्नग्रीवास्तथापरे ॥ ६० ॥ शिरांसि पेतुरन्येषामन्ये मध्ये विदारिताः। विच्छिन्नजङ्घास्त्वपरे पेतुरुर्व्यां महासुराः ॥ ६१ ॥

कितने ही असुर आधे धड़ से कटकर मर गये और बहुत-से असुर जाँघें कट जाने से पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ ६१ ॥ देवी ने किसी की एक आँख फोड़ दी, किसी की एक भुजा काट डाली और किसी को आधे धड़ से काटकर दो खंड कर दिया। बहुत

से असुर सिर कट जाने पर गिरकर फिर उठ खड़े हुए ॥ ६२ ॥ कबन्ध बड़े-बड़े आयुध लेकर देवी से युद्ध करने लगे। कितने ही कबन्ध युद्ध में बाजे की लय के साथ

एकबाह्वक्षिचरणाः केचिद्देव्या द्विधा कृताः। छिन्नेऽपि चान्ये शिरसि पतिताः पुनरुत्थिताः ॥ ६२ ॥ कबन्धा युयुधुर्देव्या गृहीत-परमायुधाः। ननृतुश्चापरे तत्र युद्धे तूर्यलयाश्रिताः ॥ ६३ ॥ कबन्धाश्छिन्नशिरसः खड्गशक्त्यृष्टिपाणयः। तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तो देवीमन्ये महासुराः ॥ ६४ ॥ पातितै रथनागाश्वैरसुरैश्च

नाचने लगे ॥ ६३ ॥ जिनके सिर कट गये थे वे कबन्ध, खड्ग, शक्ति और ऋष्टि हाथ में लेकर "खड़ी रह, खड़ी रह" कहते हुए देवी की ओर झपटे ॥ ६४ ॥ जहाँ युद्ध

हुआ वहाँ हाथी, घोड़े, रथ और असुरों के रुंड-मुंड से पृथ्वी भर गई ॥ ६५ ॥ युद्ध-भूमि में हाथी, घोड़े और असुरों के रुधिर की नदी बह चली ॥ ६६ ॥ अम्बिका ने

वसुन्धरा। अगम्या साभवत्तत्र यत्राभूत्स महारणः ॥ ६५ ॥ शोणितौघा महानद्यः सद्यस्तत्र प्रसुस्रुवुः। मध्ये चासुरसैन्यस्य वारणासुरवाजिनाम् ॥ ६६ ॥ क्षणेन तन्महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका। निन्ये क्षयं यथा वह्निस्तृणदारुमहाचयम् ॥ ६७ ॥ स च सिंहो महानादमुत्सृजन्धुतकेसरः। शरीरेभ्योऽमरारीणामसूनिव

क्षण-भर में असुरों की सेना का उसी प्रकार नाश कर दिया जैसे सूखे तृण और काठ के ढेर को आग बहुत जल्द जला देती है ॥ ६७ ॥ देवी का वाहन सिंह जब गर्दन के

बाल हिलाकर गरजता था तब मानों असुरों के प्राण निकाल लेता था ॥ ६८ ॥ देवी के गण जो असुरों से युद्ध करते थे उन पर देवता फूल बरसाकर उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ६९ ॥

विचिन्वति ॥ ६८ ॥ देव्या गणैश्च तैस्तत्र कृतं युद्धं महासुरैः ।
यथैषां तुतुषुर्देवाः पुष्पवृष्टिमुचो दिवि ॥ ॐ ॥ ६९ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
महिषासुरसैन्यवधो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

उवाच १, श्लोकाः ६८ एवम् ६९, एवमादितः १७३ ॥

—:०:—

तृतीयोऽध्यायः

सेनापतियों सहित महिषासुर का वध

ध्यानम्

ॐ उद्यद्भानुसहस्रकान्तिमरुणक्षौमां शिरोमालिकां रक्तालिप्त-
पयोधरां जपवटीं विद्यामभीतिं वरम्। हस्ताब्जैर्दधतीं त्रिनेत्रविल-
सद्वक्त्रारविन्दश्रियं देवीं बद्धहिमांशुरत्नमुकुटां वन्देऽरविन्दस्थिताम्॥

भगवती के श्रीअङ्गों की कान्ति उदयकाल के सहस्रों सूर्यों के समान है। माता लाल रंग की रेशमी साड़ी पहने हुए हैं। उनके गले में मुण्डमाला शोभा पा रही है।

दोनों स्तनों पर रक्त चन्दन का लेप लगा है। वे अपने कर-कमलों में जपमालिका, विद्या और अभय तथा वर नामक मुद्राएँ धारण किये हुए हैं। तीन नेत्रों से सुशोभित मुखारविन्द की बड़ी शोभा हो रही है। उनके मस्तक पर चन्द्रमा के साथ ही रत्नमय मुकुट बँधा है तथा वे कमल के आसन पर विराजमान हैं। ऐसी देवी को मैं भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ।

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

निहन्यमानं तत्सैन्यमवलोक्य महासुरः। सेनानीश्चिक्षुरः कोपाद्ययौ योद्धुमथाम्बिकाम् ॥ २ ॥ स देवीं शरवर्षेण ववर्ष

मेधा ऋषि कहते हैं—महाराज, महिषासुर के सेनापति चिक्षुर ने जब सेना का विनाश होते देखा, तब बड़े क्रोध से युद्ध करने के लिए देवी के सामने आया ॥ १-२ ॥ जैसे बादल मेरु पर्वत के शिखर पर पानी बरसाते हैं, वैसे ही वह असुर देवी के ऊपर

बाण बरसाने लगा ॥ ३ ॥ देवी ने खेल की तरह अपने बाणों से उसके बाण काट डाले
और घोड़ों समेत उसके सारथि को मार डाला ॥ ४ ॥ रथ की बड़ी ऊँची ध्वजा
और धनुष को भी काट डाला । फिर अपने बाणों से उसका शरीर छेद डाला ॥ ५ ॥

समरेऽसुरः । यथा मेरुगिरेः शृङ्गं तोयवर्षेण तोयदः ॥ ३ ॥ तस्य-
च्छित्वा ततो देवी लीलयैव शरोत्करान् । जघान तुरगान् बाणैर्यन्तारं
चैव वाजिनाम् ॥ ४ ॥ चिच्छेद च धनुः सद्यो ध्वजं चातिसमु-
च्छ्रितम् । विव्याध चैव गात्रेषु छिन्नधन्वानमाशुगैः ॥ ५ ॥
सच्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः । अभ्यधावत तां देवीं
खड्गचर्मधरोऽसुरः ॥ ६ ॥ सिंहमाहत्य खड्गेन तीक्ष्णधारेण मूर्धनि ।

धनुष रथ, घोड़े और सारथि के कट जाने पर वह ढाल-तलवार लेकर देवी की ओर
दौड़ा ॥ ६ ॥ उसने सिंह के सिर पर एक तीक्ष्ण खड्ग मारकर बड़े वेग से देवी की बाईं

भुजा पर एक प्रहार किया ॥ ७ ॥ वह खड्ग देवी की भुजा पर गिरते ही टूट गया। तब उसने क्रोध से लाल आँखें करके एक शूल उठाकर देवी पर चलाया। वह शूल आकाश में जाकर, अपने तेज से सूर्य के समान प्रकाशित होकर, जब देवी पर गिरने

आजघान भुजे सव्ये देवीमप्यतिवेगवान् ॥ ७ ॥ तस्याः खड्गो भुजं प्राप्य पफाल नृपनन्दन। ततो जग्राह शूलं स कोपादरुण-लोचनः ॥ ८ ॥ चिक्षेप च ततस्तत्तु भद्रकाल्यां महासुरः। जाज्वल्य-मानं तेजोभी रविबिम्बमिवाम्बरात् ॥ ९ ॥ दृष्ट्वा तदापतच्छूलं देवी शूलममुञ्चत। तच्छूलं शतधा तेन नीतं स च महासुरः ॥ १० ॥

लगा तब देवी ने अपने शूल से उसके सैकड़ों टुकड़े कर दिये और उस असुर को भी मार डाला ॥ ८-१० ॥ महिषासुर के सेनापति महाबली चिक्षुर के मारे जाने पर

चामर नाम का असुर हाथी पर सवार होकर देवी के सामने आया ॥ ११ ॥ उसने देवी के ऊपर एक शक्ति चलाई । देवी ने उसे हुंकार शब्द से निस्तेज करके पृथ्वी पर गिरा दिया ॥ १२ ॥ चामर ने अपनी शक्ति को गिरी हुई देखकर बड़े क्रोध से

हते तस्मिन्महावीर्ये महिषस्य चमूपतौ । आजगाम गजारूढश्चा-मरस्त्रिदशार्दनः ॥ ११ ॥ सोऽपि शक्तिं मुमोचाथ देव्यास्तामम्बिका द्रुतम् । हुंकाराभिहतां भूमौ पातयामास निष्प्रभाम् ॥ १२ ॥ भग्नां शक्तिं निपतितां दृष्ट्वा क्रोधसमन्वितः । चिक्षेप चामरः शूलं बाणैस्तदपि साच्छिनत् ॥ १३ ॥ ततः सिंहः समुत्पत्य गज-

देवी के ऊपर शूल चलाया । देवी ने उसे बाणों से काट डाला ॥ १३ ॥ उसके बाद देवी का वाहन सिंह कूदकर चामर के हाथी के सिर पर चढ़ गया और वहीं उस असुर

से बाहुयुद्ध करने लगा ॥ १४ ॥ अन्त में वह असुर और सिंह दोनों लड़ते हुए पृथ्वी पर आये और बड़े क्रोध से एक दूसरे पर प्रहार करने लगे ॥ १५ ॥ उसके बाद सिंह ने बड़े वेग से कूदकर एक ऐसा थप्पड़ मारा कि उस असुर का सिर धड़ से अलग हो

कुम्भान्तरे स्थितः । बाहुयुद्धेन युयुधे तेनोच्चैस्त्रिदशारिणा ॥ १४ ॥ युद्ध्यमानौ ततस्तौ तु तस्मान्नागान्महीं गतौ । युयुधातेऽतिसंरब्धौ प्रहारैरतिदारुणैः ॥ १५ ॥ ततो वेगात् खमुत्पत्य निपत्य च मृगारिणा । करप्रहारेण शिरश्चामरस्य पृथक्कृतम् ॥ १६ ॥ उदग्रश्च रणे देव्या शिलावृक्षादिभिर्हतः । दन्तमुष्टितलैश्चैव करालश्च

गया ॥ १६ ॥ तब उदग्र नाम का असुर युद्ध करने लगा । उसे भी देवी ने शिला और वृक्ष आदि से मार डाला । तब कराल नाम का असुर देवी के सामने आया । देवी

ने उसे भी दाँत, घूँसा और लातों से मार डाला ॥ १७ ॥ फिर देवी ने कुपित होकर उद्धत को गदा से मारकर चूर्ण कर दिया; वाष्कल को भिन्दिपाल से, ताम्र तथा अन्धक को बाणों से, उग्रास्य, उग्रवीर्य और महाहनु को त्रिशूल से मार डाला ॥ १८-१९ ॥

निपातितः ॥ १७ ॥ देवी क्रुद्धा गदापातैश्चूर्णयामास चोद्धतम् । वाष्कलं भिन्दिपालेन बाणैस्ताम्रं तथान्धकम् ॥ १८ ॥ उग्रास्यमुग्रवीर्यं च तथैव च महाहनुम् । त्रिनेत्रा च त्रिशूलेन जघान परमेश्वरी ॥ १९ ॥ बिडालस्यासिना कायात्पातयामास वै शिरः । दुर्धरं दुर्मुखं चोभौ शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ २० ॥ एवं संक्षीयमाणे तु स्वसैन्ये महिषासुरः । माहिषेण स्वरूपेण त्रासयामास तान्

तलवार से बिडाल का सिर काट डाला । दुर्धर और दुर्मुख को बाणों से मारकर यमराज के घर भेज दिया ॥ २० ॥ इस प्रकार जब महिषासुर की सेना नष्ट हो गई तब

वह भैंसे का रूप धारण करके देवी के गणों को डराने लगा ॥ २१ ॥ कितनों को मुँह से, कितनों को खुरों से, कितनों को पूँछ से और कितनों को सींगों से मार डाला ॥ २२ ॥ कितनों को वेग से दौड़कर कुचल डाला। कितनों को गरजने के

गणान् ॥ २१ ॥ कांश्चित्तुण्डप्रहारेण खुरक्षेपैस्तथापरान्। लाङ्गूल-ताडितांश्चान्याञ्छृङ्गाभ्यां च विदारितान् ॥ २२ ॥ वेगेन कांश्चिद-परान्नादेन भ्रमणेन च। निःश्वासपवनेनान्यान् पातयामास भूतले ॥ २३ ॥ निपात्य प्रमथानीकमभ्यधावत सोऽसुरः। सिंहं हन्तुं महादेव्याः कोपं चक्रे ततोऽम्बिका ॥ २४ ॥ सोऽपि कोपा-

शब्द से, कितनों को चारों ओर दौड़कर और कितनों को श्वास की वायु से पृथ्वी पर गिरा दिया ॥ २३ ॥ इस प्रकार वह गणों की सेना पृथ्वी पर गिरकर देवी के सिंह को मारने दौड़ा। तब देवी को बड़ा क्रोध आया ॥ २४ ॥ महापराक्रमी महिषा-

सुर कुपित होकर खुरों से पृथ्वी खोदने, सींगों से बड़े-बड़े पर्वत फेंकने और गरजने लगा ॥ २५ ॥ उसके दौड़ने से पृथ्वी खुद गई और फट गई। पूँछ के पटकने से समुद्र का पानी सब ओर फैल गया ॥ २६ ॥ सींगों के हिलाने से बादल टुकड़े-टुकड़े होकर

न्महावीर्यः खुरक्षुण्णमहीतलः। शृङ्गाभ्यां पर्वतानुच्चांश्चिक्षेप च ननाद च ॥ २५ ॥ वेगभ्रमणविक्षुण्णा मही तस्य व्यशीर्यत। लाङ्गूलेनाहतश्चाब्धिः प्लावयामास सर्वतः ॥ २६ ॥ धुतशृङ्गविभिन्नाश्च खण्डं खण्डं ययुर्घनाः। श्वासानिलास्ताः शतशो निपेतुर्नभसोऽचलाः ॥ २७ ॥ इति क्रोधसमाध्मातमापतन्तं महासुरम्।

उड़ गये। श्वास की वायु से सैकड़ों पर्वत ऊपर को उड़कर गिरने लगे ॥ २७ ॥ इस प्रकार क्रोध में झपटते हुए महिषासुर को देखकर चंडिका देवी ने उसे मारने के लिए

क्रोध किया ।। २८ ।। देवी ने पाश फेंककर उसे बाँध लिया । पाश में बँध जाने पर उसने भैंसे का रूप छोड़कर शीघ्र ही सिंह का रूप धारण कर लिया । देवी जब तक उसका सिर काटें तब तक वह हाथ में खड्ग लेकर पुरुष-रूप देख पड़ने लगा ।। २९-३० ।।

दृष्ट्वा सा चण्डिका कोपं तद्वधाय तदाकरोत् ॥ २८ ॥ सा क्षिप्त्वा तस्य वै पाशं तं बबन्ध महासुरम् । तत्याज माहिषं रूपं सोऽपि बद्धो महामृधे ॥ २९ ॥ ततः सिंहोऽभवत्सद्यो यावत्तस्याम्बिका शिरः । छिनत्ति तावत्पुरुषः खड्गपाणिरदृश्यत ॥ ३० ॥ तत एवाशु पुरुषं देवी चिच्छेद सायकैः । तं खड्गचर्मणा सार्धं ततः सोऽभू-

देवी ने बड़ी शीघ्रता से बाणों से उसे छेद डाला, और उसकी ढाल-तलवार भी काट डाली । तब वह बड़े भारी हाथी का रूप धारण करके सूँड़ से सिंह को खींचने और

गरजने लगा। यह देखकर देवी ने तलवार से उसकी सूँड़ काट डाली ॥ ३१-३२ ॥ तब उसने फिर भैंसे का रूप धारण कर लिया और पहले की तरह तीनों लोकों के चराचर जीवों को व्याकुल करने लगा ॥ ३३ ॥ तब जगत् की माता

न्महागजः ॥ ३१ ॥ करेण च महासिंहं तं चकर्ष जगर्ज च।
कर्षतस्तु करं देवी खड्गेन निरकृन्तत ॥ ३२ ॥ ततो महासुरो
भूयो माहिषं वपुरास्थितः। तथैव क्षोभयामास त्रैलोक्यं
सचराचरम् ॥ ३३ ॥ ततः क्रुद्धा जगन्माता चण्डिका पानमुत्तमम्।
पपौ पुनः पुनश्चैव जहासारुणलोचना ॥ ३४ ॥ ननर्द चासुरः

चंडिका कुपित होकर, बार-बार उत्तम मधु पान कर, लाल-लाल आँखें करके हँसने लगीं ॥ ३४ ॥ बल-वीर्य के गर्व से उन्मत्त वह असुर भी गरजने लगा और सींगों से

पर्वत उठा-उठाकर देवी पर फेंकने लगा ॥ ३५ ॥ देवी ने उसके फेंके हुए पर्वतों को बाणों से चूर कर दिया । उस समय मधु के मद से उनका मुँह लाल हो गया था । वे स्पष्ट शब्दों में बोलीं ॥ ३६ ॥ देवी ने कहा—रे मूढ़, जब तक मैं मधु पीती हूँ, तब

सोऽपि बलवीर्यमदोद्धतः । विषाणाभ्यां च चिक्षेप चण्डिकां प्रति भूधरान् ॥ ३५ ॥ सा च तान् प्रहितांस्तेन चूर्णयन्ती शरोत्करैः उवाच तं मदोद्धूतमुखरागाकुलाक्षरम् ॥ ३६ ॥

देव्युवाच ॥ ३७ ॥

गर्ज गर्ज क्षणं मूढ मधु यावत्पिबाम्यहम् । मया त्वयि हतेऽत्रैव गर्जिष्यन्त्याशु देवताः ॥ ३८ ॥

तक तू क्षण भर और गरज ले; मैं तुझे अभी मार डालूँगी । जब तू मारा जायगा, तब देवता गरजेंगे ॥ ३७-३८ ॥ मेधा ऋषि कहते हैं—यह कहकर देवी कूदकर

महिषासुर के ऊपर चढ़ बैठीं और लात से उसका गला दबाकर शूल से छेदने लगीं ॥ ३९-४० ॥ देवी के पैर के नीचे दबा हुआ महिषासुर किसी तरह अपना ऊपर

ऋषिरुवाच ॥ ३६ ॥

एवमुक्त्वा समुत्पत्य साऽऽरूढा तं महासुरम् । पादेनाक्रम्य कण्ठे च शूलेनैनमताडयत् ॥ ४० ॥ ततः सोऽपि पदाऽऽक्रान्तस्तया निजमुखात्ततः । अर्धनिष्क्रान्त एवासीद् देव्या वीर्येण संवृतः ॥४१॥ अर्धनिष्क्रान्त एवासौ युध्यमानो महासुरः । तया महासिना देव्या शिरश्छित्त्वा निपातितः ॥ ४२ ॥ ततो हाहाकृतं सर्वं दैत्यसैन्यं

का धड़ निकाल सका, इतने में देवी ने अपने पराक्रम से फिर उसे दबा लिया और तलवार से उसका सिर काटकर पृथ्वी पर गिरा दिया ॥ ४१-४२ ॥ महिषासुर के

मरने पर बची हुई दैत्य-सेना हाहाकार करती हुई भाग गई। देवता और महर्षि

ननाश तत्। प्रहर्षं च परं जग्मुः सकला देवतागणाः ॥ ४३ ॥ तुष्टुवुस्तां सुरा देवीं सह दिव्यैर्महर्षिभिः। जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॐ ॥ ४४ ॥

प्रसन्न होकर देवी की स्तुति करने लगे। गन्धर्व गाने लगे और अप्सराएँ नाचने लगीं ॥ ४३-४४ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये महिषासुरवधो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

उवाच ३ श्लोकः ४१ एवम् ४४ एवमादितः २१७

—:०:—

चतुर्थोऽध्यायः

इन्द्रादि देवताओं द्वारा देवी की स्तुति

ध्यानम्

ॐ कालाभ्राभां कटाक्षैररिकुलभयदां मौलिबद्धेन्दुरेखां शङ्खं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करैरुद्वहन्तीं त्रिनेत्राम्। सिंहस्कन्धाधिरूढां त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तीं ध्यायेद् दुर्गां जयाख्यां त्रिदशपरिवृतां सेवितां सिद्धिकामैः॥

सिद्धार्थी पुरुष जिनकी सेवा करते हैं तथा देवता जिन्हें सब ओर से घेरे रहते हैं, उन 'जया' नाम वाली दुर्गा देवी का ध्यान करे। जगदम्बा श्रीअङ्गों की आभा

काले मेघ के समान श्याम है। वे अपने कटाक्षों से शत्रु समूह को भय प्रदान करती हैं, उनके मस्तक पर आबद्ध चन्द्रमा की रेखा शोभा पाती है। वे अपने हाथों में शङ्ख, चक्र, कृपाण और त्रिशूल धारण करती हैं। उनके तीन नेत्र हैं। वे सिंह के कंधे पर चढ़ी हुई हैं और स्व तेज से तीनों लोकों को परिपूर्ण कर रही हैं।

"ॐ" ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

शक्रादयः सुरगणा निहतेऽतिवीर्ये तस्मिन्दुरात्मनि सुरारिबले च देव्या। तां तुष्टुवुः प्रणतिनम्रशिरोधरांसा वाग्भिः प्रहर्षपुलकोद्गम-चारुदेहाः ॥ २ ॥ देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या निश्शेषदेव-

मेधा ऋषि कहते हैं—हे सुरथ, जब देवी ने महापराक्रमी दुरात्मा महिषासुर और उसकी सेना को मार डाला, तब इन्द्र आदि देवता सिर और कन्धा झुकाकर, हर्ष से पुलकित होकर, देवी की स्तुति करने लगे—हम लोग भक्तिपूर्वक उस अम्बिका, देवी

को प्रणाम करते हैं, जो सब देवताओं के तेज से उत्पन्न हुई है। जो अपनी शक्ति से सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करती है और देवताओं तथा ऋषियों की पूज्य है। वह देवी हम लोगों का कल्याण करे॥ १–३॥ ब्रह्मा, विष्णु और महादेव भी जिसके अतुल

गणशक्तिसमूहमूर्त्या। तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः॥ ३॥ यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलं च। सा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु॥ ४॥ या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः।

प्रभाव का बखान नहीं कर सकते, वह भगवती जगत् का पालन और पाप से उत्पन्न भय का विनाश करे॥ ४॥ जो देवी पुण्यवान् पुरुषों के घरों में लक्ष्मी-रूप से, पापियों

के घरों में दरिद्र-रूप से, शुद्ध अन्तःकरणवालों के हृदय में बुद्धि-रूप से, सज्जनों के हृदय में श्रद्धा-रूप से और कुलीनों के हृदय में लज्जा-रूप से स्थित है, उस देवी को हम लोग प्रणाम करते हैं। हे देवि, इस जगत् की रक्षा करो ॥ ५ ॥ हे देवि, हम लोग

श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम् ॥ ५ ॥ किं वर्णयाम तव रूपमचिन्त्यमेतत् किं चातिवीर्यमसुरक्षयकारि भूरि। किं चाहवेषु चरितानि तवाद्भुतानि सर्वेषु देव्यसुरदेवगणादिकेषु ॥ ६ ॥ हेतुः समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषैर्न ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा। सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूतमव्याकृता हि

आपके इस अचिन्त्य-रूप का, असुरों के विनाश करनेवाले पराक्रम का और समर में आपके अद्भुत चरित्र का किस प्रकार वर्णन करें, अर्थात् हम लोगों में आपके गुणों के वर्णन करने की शक्ति नहीं है ॥ ६ ॥ आप सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति का कारण हैं

और सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण से युक्त हैं। रागद्वेष आदि दोषों के कारण ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी आपकी अपार महिमा नहीं जान सकते। सम्पूर्ण जगत् आपके अंश से उत्पन्न और आप ही के आश्रित है। आप सब विकारों से रहित, परम प्रकृति और आदि शक्ति हैं ॥ ७ ॥ हे देवि, यज्ञ में आप ही का नाम (स्वाहा) उच्चा-

परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या ॥ ७ ॥ यस्याः समस्तसुरता समुदीरणेन तृप्तिं प्रयाति सकलेषु मखेषु देवि। स्वाहासि वै पितृगणस्य च तृप्तिहेतु-रुच्चार्यसे त्वमत एव जनैः स्वधा च ॥ ८ ॥ या मुक्तिहेतुरविचिन्त्य-महाव्रता त्वमभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः। मोक्षार्थिभिर्मुनिभिर-

रण करने से देवता, पितृकर्म में आप ही का नाम (स्वधा) उच्चारण करने से पितर तृप्त होते हैं। इसीलिए देवकर्म में "स्वाहा" और पितृकर्म में "स्वधा" का उच्चारण किया जाता है ॥ ८ ॥ हे देवि, आप भगवती और श्रेष्ठ ब्रह्मविद्या हैं। आप ही मुक्ति

का कारण और अचिन्त्य ब्रह्मज्ञान-रूप हैं, इसी से तत्त्व के जानकार, मोक्ष चाहनेवाले जितेन्द्रिय महर्षिगण रागद्वेष आदि दोषों को त्यागकर आपकी आराधना करते हैं ।। ९ ।। हे देवि, आप वाणी-रूप हैं और दोषरहित ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा प्रणव और उत्तम पदों से

स्तसमस्तदोषैर्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि ॥ ९ ॥ शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधानमुद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नाम् । देवी त्रयी भगवती भवभावनाय वार्त्ता च सर्वजगतां परमार्तिहन्त्री ॥१०॥ मेधासि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा दुर्गासि दुर्गभवसागरनौरसङ्गा ।

युक्त सामवेद का आश्रय हैं । आप ही वेदत्रयी, देवी, भगवती और संसार का पालन करने के लिए कृषि-रूप हैं । आप ही संसार की घोर विपत्ति दूर करती हैं ।। १० ।। हे देवि, सब शास्त्रों का मर्म जाननेवाली मेधा आप ही हैं । दुर्गम भवसागर की नौका आप

ही हैं, इसी से आपका नाम दुर्गा है। आप कैटभ को मारनेवाले विष्णु के हृदय में लक्ष्मी-रूप से निवास करती हैं, और शिव ने जिसे अपने वामभाग में बैठाया है, वह गौरी आप ही हैं ॥ ११ ॥ हे देवि, बड़े आश्चर्य की बात है कि आपके मुस्कराते हुए मुख

श्रीः कैटभारिहृदयैककृताधिवासा गौरी त्वमेव शशिमौलिकृत-प्रतिष्ठा ॥ ११ ॥ ईषत्सहासममलं परिपूर्णचन्द्रबिम्बानुकारि कनको-त्तमकान्तिकान्तम्। अत्यद्भुतं प्रहृतमात्तरुषा तथापि वक्त्रं विलोक्य सहसा महिषासुरेण ॥ १२ ॥ दृष्ट्वा तु देवि कुपितं भ्रुकुटीकराल-

को, जो पूर्णमासी के निर्मल चन्द्रमा और सुवर्ण की उत्तम कान्ति के समान है, देख-कर भी महिषासुर ने बड़े क्रोध से प्रहार किया (अर्थात् वह बड़ा क्रूर था, सम्पूर्ण जगत् को मोहित करनेवाले आपके मुख को देखकर भी मोहित न हुआ) ॥ १२ ॥ हे

देवि, आपकी तिरछी भौंहों से भयानक, उदयकाल के चन्द्रमा के समान सुन्दर, कुपित मुख देखकर महिषासुर शीघ्र ही मर नहीं गया, यह और भी आश्चर्य की बात है; क्योंकि कुपित यमराज को देखकर कौन जी सकता है ।। १३ ।। हे देवि, आप प्रसन्न

मुद्यच्छशाङ्कसदृशच्छवि यन्न सद्यः । प्राणान्मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं कैर्जीव्यते हि कुपितान्तकदर्शनेन ॥ १३ ॥ देवि प्रसीद परमा भवती भवाय सद्यो विनाशयसि कोपवती कुलानि । विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तमेतन्नीतं बलं सुविपुलं महिषासुरस्य ॥ १४ ॥ ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां तेषां यशांसि न च सीदति धर्मवर्गः । धन्यास्त

होकर हम लोगों का कल्याण कीजिए । आप कुपित होकर कुल का विनाश कर देती हैं । यह बात हम लोगों को अभी मालूम हुई कि आपने क्रुद्ध होकर महिषासुर की बहुत बड़ी सेना का विनाश कर दिया ।। १४ ।। हे देवि, जिन लोगों पर आप सदा

प्रसन्न रहती हैं, वे धन्य हैं; उन्हीं का सब देशों में सम्मान होता है, उन्हीं को धन और यश मिलता है, उन्हीं का धर्म सुरक्षित रहता है, उन्हीं को स्त्री, पुत्र और सेवक मिलते हैं ॥ १५ ॥ हे देवि, जिन पुण्यात्माओं पर आप प्रसन्न रहती हैं, वे आपकी दया से,

एव निभृतात्मजभृत्यदारा येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना ॥ १५ ॥ धर्म्याणि देवि सकलानि सदैव कर्माण्यत्यादृतः प्रतिदिनं सुकृती करोति । स्वर्गं प्रयाति च ततो भवतीप्रसादाल्लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि तेन ॥ १६ ॥ दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि । दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या सर्वो-

हमेशा बड़ी श्रद्धा से नित्य नैमित्तिक धर्म-कर्म करते हैं । और आपकी दया से स्वर्ग को जाते हैं । इसलिए तीनों लोकों में फल देनेवाली आप ही हैं ॥ १६ ॥ हे देवि, संकट पड़ने पर जो आपका स्मरण करते हैं, उनका भय आप दूर कर देती हैं, और जो

एकाग्रचित्त होकर आपका स्मरण करते हैं, उनको आप अच्छी बुद्धि देती हैं। आप दरिद्रता, दुःख और भय का नाश करनेवाली हैं। आपके सिवा सबका उपकार करने के लिए दयावान् दूसरा कोई नहीं है ॥१७॥ हे देवि, महिषासुर आदि के मरने पर

पकारकरणाय सदाऽऽर्द्रचित्ता ॥ १७ ॥ एभिर्हतैर्जगदुपैति सुखं तथैते कुर्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम् । संग्राममृत्युमधिगम्य दिवं प्रयान्तु मत्वेति नूनमहितान् विनिहंसि देवि ॥ १८ ॥ दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म सर्वासुरानरिषु यत्प्रहिणोषि शस्त्रम् । लोकान्

संसार सुखी होगा, और नरक में जाने के लिए पाप करनेवाले दानव युद्ध में प्राण त्यागकर स्वर्ग प्राप्त करेंगे, उन्हीं दो कारणों से आपने शत्रुओं को मार डाला ॥१८॥ हे देवि, आपकी कोप-दृष्टि से ही दैत्य भस्म हो सकते थे, शस्त्र चलाने की कोई आव-

श्यकता न थी। किन्तु आपने शस्त्र इसलिए चलाया कि आपके शस्त्र के प्रहार से निष्पाप होकर वे स्वर्ग को जायँ। इससे ज्ञात होता है कि शत्रुओं पर भी आप दया करती हैं ॥ १९ ॥ हे देवि, असुरों की आँखें जो आपके शूल और भयानक खड्ग की

प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता इत्थं मतिर्भवति तेष्वपि तेऽति-साध्वी ॥ १९ ॥ खड्गप्रभानिकरविस्फुरणैस्तथोग्रैः शूलाग्रकान्ति-निवहेन दृशोऽसुराणाम्। यन्नागता विलयमंशुमदिन्दुखण्डयोग्याननं तव विलोकयतां तदेतत् ॥ २० ॥ दुर्वृत्तवृत्तशमनं तव देवि शीलं रूपं तथैतदविचिन्त्यमतुल्यमन्यैः। वीर्यं च हन्तृ हृतदेवपराक्रमाणां वैरिष्वपि

चमक से न फूटीं, इसका यह कारण है कि वे लोग आपका मुख देखते थे जो अमृतकिरणयुक्त अर्धचन्द्र के समान है ॥ २० ॥ हे देवि, आप अचिन्त्य रूप और अनुपम हैं। आपका स्वभाव है कि आप दुष्टों के दुराचार का विनाश कर देती

हैं। इसी से आपने देवताओं को सतानेवाले असुरों को अपने पराक्रम से मार डाला। इस प्रकार आपने शत्रुओं पर भी दया की है॥ २१॥ हे देवि, आपके पराक्रम की उपमा किससे दी जा सकती है? और शत्रुओं को भय देने-

प्रकटितैव दया त्वयेत्थम् ॥२१॥ केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य रूपं च शत्रुभयकार्यतिहारि कुत्र। चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा त्वय्येव देवि वरदे भुवनत्रयेऽपि ॥ २२ ॥ त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपु-नाशनेन त्रातं त्वया समरमूर्धनि तेऽपि हत्वा। नीता दिवं रिपुगणा

वाला तथा दूसरों का मन हरनेवाला आपका जैसा रूप किसका है? हे वरदे, चित्त में दया और युद्ध में निष्ठुरता, यह दो बातें एक साथ आपमें ही देखी जाती हैं, आपके सिवा तीनों लोकों में ऐसा कोई नहीं॥ २२॥ हे देवि, आपने शत्रुओं का विनाश

करके तीनों लोकों की रक्षा की, और युद्ध में मारकर शत्रुओं को स्वर्गलोक प्राप्त कराया, तथा हम लोगों का भय दूर किया। आपको प्रणाम है॥ २३॥ हे अम्बिके, आप अपने शूल से, खड्ग से, घंटा के शब्द से और धनुष की ज्या के शब्द से हम

भयमप्यपास्तमस्माकमुन्मदसुरारिभवं नमस्ते॥ २३॥ शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके। घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च॥ २४॥ प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे। भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि॥ २५॥ सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते। यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा

लोगों की रक्षा कीजिए॥ २४॥ हे चंडिके, अपने शूल को घुमाकर पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर, चारों दिशाओं में तथा आग्नेय आदि चारों कोनों में हम लोगों की रक्षा कीजिए॥ २५॥ अपने सौम्य-रूपों से, जिनसे लोकों की सृष्टि करती हैं और अति

भयानक रूपों से जिनसे लोकों का संहार करती हैं, तथा सम्पूर्ण जगत् की रक्षा कीजिए ॥ २६ ॥ हे अम्बिके, आपके हाथ में खड्ग, शूल और गदा आदि जितने अस्त्र हैं, उनसे हम लोगों की चारों ओर से रक्षा कीजिए ॥ २७ ॥ मेधा ऋषि कहते हैं—हे सुरथ,

भुवम् ॥ २६ ॥ खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके । करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ॥ २७ ॥

ऋषिरुवाच ॥ २८ ॥

एवं स्तुता सुरैर्दिव्यैः कुसुमैर्नन्दनोद्भवैः । अर्चिता जगतां धात्री तथा गन्धानुलेपनैः ॥ २९ ॥ भक्त्या समस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यैर्धूपैस्तु धूपिता । प्राह प्रसादसुमुखी समस्तान् प्रणतान् सुरान् ॥ ३० ॥

देवताओं ने जब नन्दन वन के दिव्य फूलों और चन्दन आदि सुगन्धित वस्तुओं से पूजन तथा दिव्य धूप से धूपित करके बड़ी भक्ति से इस प्रकार देवी की स्तुति की, तब जगद्धात्री भगवती प्रसन्न होकर बोलीं ॥ २८–३० ॥ देवी ने कहा—हे देवताओ, जो

तुम्हारी इच्छा हो, वह वर माँगो ।। ३१–३२ ।। देवता बोले—हे भगवती, आपने हम लोगों की सब इच्छाएँ पूरी कर दीं, अब कुछ बाकी नहीं है ।। ३३–३४ ।। क्योंकि हम लोगों के शत्रु महिषासुर को आपने मार डाला; किन्तु हे महेश्वरी, यदि आप वर

देव्युवाच ।। ३१ ।।

व्रियतां त्रिदशाः सर्वे यदस्मत्तोऽभिवाञ्छितम् ॥ ३२ ॥

देवा ऊचुः ।। ३३ ।।

भगवत्या कृतं सर्वं न किंचिदवशिष्यते ॥ ३४ ॥ यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः । यदि चापि वरो देयस्त्वयास्माकं महेश्वरि ॥ ३५ ॥ संस्मृता संस्मृता त्वं नो हिंसेथाः परमापदः । यश्च मर्त्यः स्तवैरेभिस्त्वां स्तोष्यत्यमलानने ॥ ३६ ॥ तस्य वित्त-

देना चाहती हैं तो जब कभी हम लोग आपका स्मरण करें तब आप हमारी विपत्तियाँ दूर कर दें और जो कोई मनुष्य इन स्तोत्रों से आपकी स्तुति करे ।। ३५–३६ ।। उसके

धन, ऐश्वर्य, स्त्री और पुत्र आदि की वृद्धि हो। हे अम्बिके, हम लोगों पर सदा प्रसन्न रहिए ॥ ३७ ॥ ऋषि कहते हैं—इस प्रकार अपने और सम्पूर्ण जगत् के लिए देवताओं के प्रार्थना करने पर भद्रकाली प्रसन्न होकर 'एवमस्तु' कहकर अन्तर्धान हो

र्द्धिविभवैर्धनदारादिसम्पदाम् । वृद्धयेऽस्मत्प्रसन्ना त्वं भवेथाः सर्वदाम्बिके ॥ ३७ ॥

ऋषिरुवाच ॥ ३८ ॥

इति प्रसादिता देवैर्जगतोऽर्थे तथाऽऽत्मनः । तथेत्युक्त्वा भद्रकाली बभूवान्तर्हिता नृप ॥ ३९ ॥ इत्येतत्कथितं भूप सम्भूता सा यथा पुरा । देवी देवशरीरेभ्यो जगत्त्रयहितैषिणी ॥ ४० ॥ पुनश्च

गईं ॥ ३८-३९ ॥ हे राजन्, तीनों लोकों का हित करनेवाली भगवती जिस प्रकार देवताओं के शरीर से उत्पन्न हुईं, वह वृत्तान्त हमने कहा ॥ ४० ॥ उसके बाद फिर जिस

प्रकार देवताओं का उपकार करनेवाली देवी शुम्भ-निशुम्भ आदि दुष्ट दैत्यों को मारने

गौरीदेहात्सा समुद्भूता यथाभवत्। वधाय दुष्टदैत्यानां तथा शुम्भ-निशुम्भयोः ॥ ४१ ॥ रक्षणाय च लोकानां देवानामुपकारिणी। तच्छृणुष्व मयाऽऽख्यातं यथावत्कथयामि ते ॥ ह्रीं ॐ ॥ ४२ ॥

और सब लोगों की रक्षा करने के लिए गौरी की देह से उत्पन्न हुईं, वह वृत्तान्त भी विस्तार के साथ कहते हैं, सुनो ॥ ४१–४२ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये शक्रादिस्तुतिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

उवाच ५, अर्धश्लोकौ २, श्लोकाः ३५, एवम्० ४२, एवमादितः २५९ ॥

—:(०):—

पञ्चमोऽध्यायः

देवगणों द्वारा देवी की स्तुति, चण्ड-मुण्ड के मुख से अम्बिका के रूप की प्रशंसा सुनकर शुम्भ का भगवती के पास दूत भेजना और दूत का निराश लौटना।

विनियोगः

ॐ अस्य श्रीउत्तरचरित्रस्य रुद्र ऋषिः, महासरस्वती देवता, अनुष्टुप् छन्दः, भीमा शक्तिः, भ्रामरी बीजम्, सूर्यस्तत्त्वम्, सामवेदः स्वरूपम्, महासरस्वतीप्रीत्यर्थे उत्तरचरित्रपाठे विनियोगः।

ॐ इस उत्तर चरित्र के रुद्र ऋषि हैं, महासरस्वती देवता हैं, अनुष्टुप् छन्द है, भीमा शक्ति है, भ्रामरी बीज है, सूर्य तत्त्व है और सामवेद स्वरूप है। महासरस्वती की प्रसन्नता के लिये उत्तर चरित्र के पाठ में इसका विनियोग किया जाता है।

ध्यानम्

ॐ घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुः सायकं हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम्। गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधार-भूतां महापूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम्॥

जो अपने करकमलों में घण्टा, शूल, हल, शङ्ख, मूसल, चक्र, धनुष और बाण धारण करती हैं, शरद् ऋतु के शोभासम्पन्न चन्द्रमा के समान जिनकी मनोहर कान्ति है, जो तीनों लोकों की आधारभूता और शुम्भ आदि दैत्यों का नाश करने वाली हैं तथा गौरी के शरीर से जिनका प्राकट्य हुआ है, उन महासरस्वती देवी का मैं अहर्निश भजन करता हूँ।

मेधा ऋषि कहते हैं—हे सुरथ, पूर्व समय में शुम्भ-निशुम्भ दो असुरों ने अपने बल और अहंकार से इन्द्र का राज्य तथा सब देवताओं के यज्ञ-भाग छीनकर तीनों लोकों को अपने वश में कर लिया था ।। १-२ ।। उन दोनों असुरों ने सूर्य, चन्द्रमा,

'ॐ क्लीं ऋषिरुवाच ।। १ ।।

पुरा शुम्भनिशुम्भाभ्यामसुराभ्यां शचीपतेः । त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च हृता मदबलाश्रयात् ॥ २ ॥ तावेव सूर्यतां तद्वदधिकारं तथैन्दवम् । कौबेरमथ याम्यं च चक्राते वरुणस्य च ॥ ३ ॥ तावेव पवनर्द्धिं च चक्रतुर्वह्निकर्म च । ततो देवा विनिर्धूता भ्रष्टराज्याः पराजिताः ॥ ४ ॥

कुबेर, यम, वरुण, पवन और अग्नि के भी अधिकार छीन लिये और देवताओं को परास्त करके राज्य से निकाल दिया ।। ३-४ ।। तब असुरों के डर से काँपते हुए देवता

अपराजिता दवी का इस प्रकार स्मरण करने लगे ॥ ५ ॥ देवी ने हम लोगों को वर दिया था कि विपत्ति पड़ने पर जब हमारा स्मरण करोगे, तब हम उसी समय तुम्हारी सब विपत्तियाँ दूर कर देंगी। यह सोचकर देवता हिमालय पर्वत पर

हृताधिकारास्त्रिदशास्ताभ्यां सर्वे निराकृताः । महासुराभ्यां तां देवीं संस्मरन्त्यपराजिताम् ॥५॥ तयास्माकं वरो दत्तो यथाऽऽपत्सु स्मृताखिलाः । भवतां नाशयिष्यामि तत्क्षणात्परमापदः ॥ ६ ॥ इति कृत्वा मतिं देवा हिमवन्तं नगेश्वरम् । जग्मुस्तत्र ततो देवीं विष्णुमायां प्रतुष्टुवुः ॥ ७ ॥

जाकर देवी विष्णुमाया की स्तुति करने लगे ॥ ६–७ ॥ देवताओं ने कहा—देवी, महादेवी और शिवा को हमारा प्रणाम है। प्रकृति देवी और भद्रा देवी को हम

लोग प्रणाम करते हैं ॥ ८–९ ॥ रौद्रा, नित्या, गौरी, धात्री, ज्योत्स्ना, इन्दुरूपिणी और परमानन्दमयी देवी को निरन्तर नमस्कार है । १० । कल्याण करनेवाली, वृद्धि

देवा ऊचुः ॥ ८ ॥

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः । नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥ ९ ॥ रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः । ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः ॥ १० ॥ कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः । नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः ॥ ११ ॥ दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै

और सिद्धि देनेवाली भगवती को तथा राक्षसों और राजाओं की लक्ष्मी और शिवशक्ति शर्वाणी को हम लोग बार-बार प्रणाम करते हैं ॥११॥ संसार-सागर से पार करनेवाली

दुर्गा को, सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करनेवाली और प्रकृति-पुरुष में भेदज्ञानरूपिणी देवी को तथा काली और धूम्रा (जिनका रूप धुआँ का-सा है) को निरन्तर प्रणाम है ॥ १२ ॥ अतिसौम्या, अर्थात् विद्या-रूप से संसार का दुःख नष्ट करनेवाली तथा

सर्वकारिण्यै । ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः ॥ १२ ॥
अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः । नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै
कृत्यै नमो नमः ॥ या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता । नम-
स्तस्यै ॥ १४ ॥ नमस्तस्यै ॥ १५ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १६ ॥

अतिरौद्रा, अर्थात् अविद्या-रूप से संसार में प्रवृत्ति करानेवाली देवी को विनीतभाव से बार-बार प्रणाम है । संसार की प्रतिष्ठारूपिणी और कार्यरूपिणी देवी को हम लोग प्रणाम करते हैं ॥ १३ ॥ जो देवी सब प्राणियों में विष्णुमाया नाम से कही जाती हैं, उनको हम लोग बार-बार प्रणाम करते हैं ॥ १४-१६ ॥ जो देवी सब प्राणियों में चेतना

नाम से कही जाती हैं, उनको हम लोग बार-बार प्रणाम करते हैं ॥ १७–१९ ॥ जो देवी सब प्राणियों में बुद्धि-रूप से स्थित हैं, उनको हम लोग बार-बार प्रणाम करते

या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते । नमस्तस्यै ॥ १७ ॥ नमस्तस्यै ॥ १८ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १९ ॥ या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥ २० ॥ नमस्तस्यै ॥ २१ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २२ ॥ या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥ २३ ॥ नमस्तस्यै ॥ २४ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २५ ॥

हैं ॥ २०–२२ ॥ जो देवी सब प्राणियों में निद्रा-रूप से स्थित हैं, उनको हम लोग अनेक बार प्रणाम करते हैं ॥ २३–२५ ॥ जो देवी सब प्राणियों में सुधा-रूप से स्थित हैं,

उनको हम लोग बार-बार प्रणाम करते हैं ॥ २६–२८ ॥ जो देवी सब प्राणियों में छाया-रूप से स्थित हैं, उनको हम लोग बार-बार प्रणाम करते हैं ॥ २९-३१ ॥ जो देवी सब

या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥ २६ ॥ नमस्तस्यै ॥ २७ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २८ ॥ या देवी सर्वभूतेषु-च्छायारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥ २९ ॥ नमस्तस्यै ॥ ३० ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥३१॥ या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥ ३२ ॥ नमस्तस्यै ॥ ३३ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ३४ ॥

प्राणियों में शक्ति-रूप से स्थित हैं, उनको हम लोग बार-बार प्रणाम करते हैं ॥ ३२–३४ ॥ जो देवी सब प्राणियों में तृष्णा-रूप से स्थित हैं, उनको हम लोग बार-बार प्रणाम

करते हैं ॥ ३५–३७ ॥ जो देवी सब प्राणियों में क्षमा-रूप से स्थित हैं, उनको हम लोग बार-बार प्रणाम करते हैं ॥ ३८–४० ॥ जो देवी सब प्राणियों में जाति-रूप से स्थित हैं,

या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥ ३५ ॥ नमस्तस्यै ॥ ३६ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ३७ ॥ या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥ ३८ ॥ नमस्तस्यै ॥ ३९ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥४०॥ या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥ ४१ ॥ नमस्तस्यै ॥ ४२ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ४३ ॥ या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥ ४४ ॥ नमस्तस्यै ॥ ४५ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ४६ ॥ या देवी सर्व-

उनको हम लोग बार-बार प्रणाम करते हैं ॥ ४१–४३ ॥ जो देवी सब प्राणियों में लज्जा-रूप से स्थित हैं, उनको हम लोग बार-बार प्रणाम करते हैं ॥ ४४–४६ ॥ जो देवी सब

प्राणियों में शान्ति-रूप से स्थित हैं, उनको हम लोग बार-बार प्रणाम करते हैं ॥ ४७–४९ ॥ जो देवी सब प्राणियों में श्रद्धा-रूप से स्थित हैं, उनको हम लोग बार-बार प्रणाम

भूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥ ४७ ॥ नमस्तस्यै ॥४८॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ४९ ॥ या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥ ५० ॥ नमस्तस्यै ॥ ५१ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ५२ ॥ या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥ ५३ ॥ नमस्तस्यै ॥ ५४ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥५५॥

करते हैं ॥ ५०–५२ ॥ जो देवी सब प्राणियों में कान्ति-रूप से स्थित हैं, उनको हम लोग बार-बार प्रणाम करते हैं ॥ ५३–५५ ॥ जो देवी सब प्राणियों में लक्ष्मी-रूप

मे स्थित हैं, उनको हम लोग बार-बार प्रणाम करते हैं ।। ५६–५८ ।। जो देवी सब प्राणियों में वृत्ति-रूप से स्थित हैं, उनको हम लोग बार-बार प्रणाम करते हैं ।। ५९–

या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥ ५६ ॥ नमस्तस्यै ॥ ५७ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ५८ ॥ या देवी सर्व-भूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥ ५९ ॥ नमस्तस्यै ॥ ६० ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ६१ ॥ या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥ ६२ ॥ नमस्तस्यै ॥ ६३ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ६४ ॥ या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता । नम-

६१ ।। जो देवी सब प्राणियों में स्मृति-रूप से स्थित हैं, उनको हम लोग बार-बार प्रणाम करते हैं ।। ६२–६४ ।। जो देवी सब प्राणियों में दया-रूप से स्थित हैं, उनको हम

लोग बार-बार प्रणाम करते हैं ।। ६५—६७ ।। जो देवी सब प्राणियों में सन्तोष-रूप से स्थित हैं, उनको हम लोग बार-बार प्रणाम करते हैं ।। ६८—७० ।। जो देवी सब प्राणियों में मातृ-रूप से स्थित हैं, उनको हम लोग बार-बार प्रणाम करते हैं ।। ७१—७३ ।।

स्तस्यै ॥ ६५ ॥ नमस्तस्यै ॥ ६६ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ६७ ॥ या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥ ६८ ॥ नमस्तस्यै ॥ ६९ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ७० ॥ या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥ ७१ ॥ नमस्तस्यै ॥ ७२ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ७३ ॥ या देवी सर्वभूतेषु । भ्रान्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥ ७४ ॥ नमस्तस्यै ॥ ७५ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ७६ ॥ इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या । भूतेषु

जो देवी सब प्राणियों में भ्रान्ति-रूप से स्थित हैं, उनको हम लोग बार-बार प्रणाम करते हैं ।। ७४—७६ ।। जो देवी सब इन्द्रियों की और संसारभर के प्राणियों की अधि-

ष्ठात्री हैं और सब प्राणियों में निरंतर व्याप्त हैं, उनको हम लोग बार-बार प्रणाम करते हैं ।। ७७ ।। जो देवी चैतन्य-रूप से सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त हैं, उनको हम लोग बार-बार प्रणाम करते हैं ।। ७८—८० ।। पूर्व समय में अभीष्ट फल पाने के लिए देवताओं ने जिनकी

सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः ॥ ७७ ॥ चितिरूपेण या कृत्स्न-मेतद्व्याप्य स्थिता जगत् । नमस्तस्यै ॥ ७८ ॥ नमस्तस्यै ॥ ७९ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ८० ॥ स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रयात्तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता । करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥ ८१ ॥ या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितै-

स्तुति की थी और देवराज इन्द्र ने बहुत दिनों तक जिनकी सेवा की थी; जो देवी मंगल का कारण हैं, वह हम लोगों का कल्याण करें और सब विपत्तियाँ दूर करें ।। ८१ ।।

प्रबल दैत्यों से पीड़ित होकर, हम लोग इस समय जिनको प्रणाम करते हैं, जो स्मरण करते ही हम लोगों की विपत्तियाँ दूर करती हैं, वह देवी हमारी सब विपत्तियों को नाश करें ॥ ८२ ॥ मेधा ऋषि कहते हैं—राजन्, इस प्रकार देवताओं के स्तुति करने पर

रस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते । या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः
सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्तिभिः ॥ ८२ ॥

ऋषिरुवाच ॥ ८३ ॥

एवं स्तवादियुक्तानां देवानां तत्र पार्वती । स्नातुमभ्याययौ
तोये जाह्नव्या नृपनन्दन ॥ ८४ ॥ साब्रवीत्तान् सुरान् सुभ्रूर्भवद्भिः

पार्वती प्रसन्न होकर गंगास्नान के बहाने देवताओं के सामने प्रकट होकर बोलीं—तुम लोग यहाँ किसकी स्तुति करते हो । उसी समय पार्वती की देह से उत्पन्न होकर शिवा देवी ने उत्तर दिया—शुम्भ-निशुम्भ ने इनको युद्ध में परास्त करके राज्य से निकाल

दिया है, इसलिए यह सब देवता यहाँ एकत्र होकर हमारी स्तुति करते हैं ॥ ८३–८६ ॥ शिवा देवी पार्वती के शरीर-कोश से निकली थीं, इसलिए लोकों में कौशिकी नाम से प्रसिद्ध हुईं ॥ ८७ ॥ पार्वती की देह से जब कौशिकी निकल आईं, तब पार्वती काली

स्तूयतेऽत्र का । शरीरकोशतश्चास्याः समुद्भूताब्रवीच्छिवा ॥ ८५ ॥ स्तोत्रं ममैतत् क्रियते शुम्भदैत्यनिराकृतैः । देवैः समेतैः समरे निशुम्भेन पराजितैः ॥ ८६ ॥ शरीरकोशाद्यत्तस्याः पार्वत्या निःसृताम्बिका । कौशिकीति समस्तेषु ततो लोकेषु गीयते ॥८७॥ तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाभूत्सापि पार्वती । कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया ॥ ८८ ॥ ततोऽम्बिकां परं रूपं बिभ्राणां

हो गईं और कालिका नाम से प्रसिद्ध होकर हिमालय पर्वत पर रहने लगीं ॥ ८८ ॥ दैवयोग से शुम्भ-निशुम्भ के नौकरों ने, जिनका नाम चण्ड-मुण्ड था, उन परम सुन्दरी

अम्बिका को देखा ॥ ८९ ॥ उन दोनों ने जाकर शुम्भ से कहा—महाराज, एक परम सुन्दरी स्त्री हिमालय पर्वत पर बैठी है। वह अपने तेज से उस पर्वत को प्रकाशित कर रही है ॥ ९० ॥ हे असुरेश्वर, वैसा सुन्दर रूप आज तक किसी ने कहीं नहीं देखा।

सुमनोहरम्। ददर्श चण्डो मुण्डश्च भृत्यौ शुम्भनिशुम्भयोः ॥ ८९ ॥ ताभ्यां शुम्भाय चाख्याता अतीव सुमनोहरा। काप्यास्ते स्त्री महाराज भासयन्ती हिमाचलम् ॥ ९० ॥ नैव तादृक् क्वचिद्रूपं दृष्टं केनचिदुत्तमम्। ज्ञायतां काप्यसौ देवी गृह्यतां चासुरेश्वर ॥ ९१ ॥ स्त्रीरत्नमतिचार्वङ्गी द्योतयन्ती दिशस्त्विषा। सा तु तिष्ठति दैत्येन्द्र

आप मालूम कीजिए कि वह देवी कौन है और उसे ग्रहण कीजिए ॥ ९१ ॥ वह बहुत सुन्दरी है, सुन्दरी स्त्रियों में रत्न-रूप है, वह अपनी कान्ति से सब दिशाओं को प्रका-

शित कर रही है । आप चलकर उसे देखिए ॥ ९२ ॥ हे प्रभो, तीनों लोकों में जितने रत्न, मणि, हाथी और घोड़े हैं, वे सब इस समय आपके घर में मौजूद हैं ॥ ९३ ॥ आप हाथियों में श्रेष्ठ ऐरावत हाथी, घोड़ों में श्रेष्ठ उच्चैःश्रवा घोड़ा और पारिजात वृक्ष इन्द्र

**तां भवान् द्रष्टुमर्हति ॥ ९२ ॥ यानि रत्नानि मणयो गजाश्वा-
दीनि वै प्रभो । त्रैलोक्ये तु समस्तानि साम्प्रतं भान्ति ते गृहे ॥९३॥
ऐरावतः समानीतो गजरत्नं पुरन्दरात् । पारिजाततरुश्चायं तथैवो-
च्चैःश्रवा हयः ॥ ९४ ॥ विमानं हंससंयुक्तमेतत्तिष्ठति तेऽङ्गणे ।
रत्नभूतमिहानीतं यदासीद्वेधसोऽद्भुतम् ॥ ९५ ॥ निधिरेष महापद्मः**

से छीन लाये ॥ ९४ ॥ ब्रह्मा का हंसयुक्त अद्भुत विमान भी आपने बलपूर्वक लाकर घर में रक्खा है, जो अब तक मौजूद है ॥ ९५ ॥ महापद्म नामक निधि जो सब निधियों में

श्रेष्ठ है, उसे भी आप कुबेर से छीन लाये । समुद्र ने डरकर फूले हुए कमलों की किंजल्किनी नाम की माला आपको दे दी ॥ ९६ ॥ वरुण का छाता, जो सुवर्ण के समान चमकता है, वह भी आपके घर में मौजूद है । प्रजापति के पास जो उत्तम रथ था, वह

समानीतो धनेश्वरात् । किञ्जल्किनीं ददौ चाब्धिर्मालामम्लानपङ्कजाम् ॥ ९६ ॥ छत्रं ते वारुणं गेहे काञ्चनस्रावि तिष्ठति । तथायं स्यन्दनवरो यः पुराऽऽसीत्प्रजापतेः ॥ ९७ ॥ मृत्योरुत्क्रान्तिदा नाम शक्तिरीश त्वया हृता । पाशः सलिलराजस्य भ्रातुस्तव परिग्रहे ॥ ९८ ॥ निशुम्भस्याब्धिजाताश्च समस्ता रत्न-

भी आपके घर में है ॥ ९७ ॥ यमराज की उत्क्रान्तिदा (मौत देनेवाली) शक्ति भी आप छीन लाये । आपके भाई निशुम्भ ने वरुण का पाश छीनकर अपने घर में रक्खा है ॥ ९८ ॥ जितने रत्न समुद्र से उत्पन्न हुए हैं, वे सब निशुम्भ के घर में हैं, अग्नि ने डर

के मारे आपको पहनने के लिए दो दिव्य वस्त्र दिये हैं ॥ ९९ ॥ हे दैत्येन्द्र, इसी तरह और भी सब रत्न आप छीन लाये; फिर इस स्त्री-रत्न को क्यों नहीं ग्रहण करते ॥१००॥

जातयः । वह्निरपि ददौ तुभ्यमग्निशौचे च वाससी ॥ ९९ ॥ एवं दैत्येन्द्र रत्नानि समस्तान्याहृतानि ते । स्त्रीरत्नमेषा कल्याणी त्वया कस्मान्न गृह्यते ॥ १०० ॥

ऋषिरुवाच ॥ १०१ ॥

निशम्येति वचः शुम्भः स तदा चण्डमुण्डयोः । प्रेषयामास सुग्रीवं दूतं देव्या महासुरम् ॥ १०२ ॥ इति चेति च वक्तव्या सा गत्वा वचनान्मम । यथा चाभ्येति सम्प्रीत्या तथा कार्यं त्वया

मेधा ऋषि कहते हैं—हे राजन्, चण्ड-मुण्ड की यह बात सुनकर शुम्भ ने सुग्रीव नाम का एक दूत देवी के पास भेजा और उससे कहा—मेरी यह आज्ञा उसको सुनाओ,

और जिस तरह वह राजी होकर चली आवे, उसी तरह ले आओ ॥ १०१-१०३ ॥ वह दूत हिमालय पर देवी के पास जाकर कोमल और मधुर वचन बोला ॥ १०४ ॥ दूत ने कहा–हे देवि, दैत्यों के राजा शुम्भ, जो इस समय तीनों लोकों के स्वामी हैं; उनका

लघु ॥ १०३ ॥ स तत्र गत्वा यत्रास्ते शैलोद्देशेऽतिशोभने । सा देवी तां ततः प्राह श्लक्ष्णं मधुरया गिरा ॥ १०४ ॥

दूत उवाच ॥ १०५ ॥

देवि दैत्येश्वरः शुम्भस्त्रैलोक्ये परमेश्वरः । दूतोऽहं प्रेषितस्तेन त्वत्सकाशमिहागतः ॥ १०६ ॥ अव्याहताज्ञः सर्वासु यः सदा देवयोनिषु । निर्जिताखिलदैत्यारिः स यदाह शृणुष्व

भेजा हुआ मैं आपके पास आया हूँ ॥ १०५-१०६ ॥ उन्होंने सब देवताओं को जीत लिया है, कोई देवता उनकी आज्ञा नहीं टाल सकता । उनका सन्देश मैं आपसे कहता

हूँ, सुनिए ।। १०७ ।। उन्होंने कहा है, हम तीनों लोकों के राजा हैं । सब देवता हमारे वश में हैं । देवताओं के यज्ञ-भाग हमी लेते हैं ।। १०८ ।। तीनों लोकों में, जितने अच्छे-अच्छे रत्न हैं, वे सब हमारे पास हैं । हाथियों में श्रेष्ठ ऐरावत हाथी हमने इन्द्र से छीन

तत् ।। १०७ ।। मम त्रैलोक्यमखिलं मम देवा वशानुगाः । यज्ञ-भागानहं सर्वानुपाश्नामि पृथक् पृथक् ।। १०८ ।। त्रैलोक्ये वर-रत्नानि मम वश्यान्यशेषतः । तथैव गजरत्नं च हृत्वा देवेन्द्र-वाहनम् ।। १०९ ।। क्षीरोदमथनोद्भूतमश्वरत्नं ममामरैः । उच्चैःश्र-वससंज्ञं तत्प्रणिपत्य समर्पितम् ।। ११० ।। यानि चान्यानि देवेषु गन्धर्वेषूरगेषु च । रत्नभूतानि भूतानि तानि मय्येव

लिया है ।। १०९ ।। समुद्र मथने से जो उच्चैःश्रवा घोड़ा निकला था, उसे भी देवताओं ने हमें प्रणाम करके दे दिया है ।। ११० ।। देवताओं, गन्धर्वों और नागों के पास जितने

रत्न थे, वे सब इस समय हमारे पास हैं ॥ १११ ॥ हम तुमको सब स्त्रियों में रत्नस्वरूप समझते हैं, इसलिए तुम हमारे पास चली आओ; क्योंकि इस समय सब रत्नों का भोग हमी करते हैं ॥ ११२ ॥ तुम चाहे हमारे पास रहो या हमारे छोटे भाई महापराक्रमी

शोभने ॥ १११ ॥ स्त्रीरत्नभूतां त्वां देवि लोके मन्यामहे वयम् । सा त्वमस्मानुपागच्छ यतो रत्नभुजो वयम् ॥ ११२ ॥ मां वा ममानुजं वापि निशुम्भमुरुविक्रमम् । भज त्वं चञ्चलापाङ्गि रत्न-भूतासि वै यतः ॥ ११३ ॥ परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यसे मत्परिग्रहात् । एतद् बुद्ध्या समालोच्य मत्परिग्रहतां व्रज ॥ ११४ ॥

निशुम्भ के पास; जहाँ तुम्हारी इच्छा हो आकर रहो; क्योंकि तुम रत्न-रूप हो ॥ ११३ ॥ हमारे पास रहोगी तो तुमको अतुल ऐश्वर्य प्राप्त होगा । इन बातों का विचार करके तुम हमारी स्त्री बनो ॥ ११४ ॥ मेधा ऋषि कहते हैं—दूत के यह कहने पर जगद्धात्री भगवती दुर्गा

मुस्कराकर गम्भीर शब्द बोलीं ।। ११५-११६ ।। देवी ने कहा—तुमने जो कहा है, वह सब सत्य है, उसमें झूठ कुछ भी नहीं है। शुम्भ और निशुम्भ तीनों लोकों के राजा

ऋषिरुवाच ।। ११५ ।।

इत्युक्ता सा तदा देवी गम्भीरान्तःस्मिता जगौ । दुर्गा भगवती भद्रा ययेदं धार्यते जगत् ॥ ११६ ॥

देव्युवाच ।। ११७ ।।

सत्यमुक्तं त्वया नात्र मिथ्या किंचित्त्वयोदितम् । त्रैलोक्याधिपतिः शुम्भो निशुम्भश्चापि तादृशः ॥ ११८ ॥ किं त्वत्र यत्प्रतिज्ञातं मिथ्या तत्क्रियते कथम् । श्रूयतामल्पबुद्धित्वात्प्रतिज्ञा या कृता पुरा ॥ ११९ ॥ यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति । यो

हैं ।। ११७-११८ ।। किन्तु मैंने जो प्रतिज्ञा की है, उसे कैसे मिथ्या करूँ । मैंने मूर्खता से जो प्रतिज्ञा कर ली है वह सुनो ।। ११९ ।। जो युद्ध में मुझे जीत ले, जो मेरा दर्प तोड़

दे, अथवा जो मेरे समान बलवान् हो, वही मेरा पति होगा ।। १२० ।। इसलिए महासुर शुम्भ या निशुम्भ, दो में से कोई भी यहाँ आवे और मुझे युद्ध में जीतकर शीघ्र ब्याह ले ।। १२१ ।। दूत ने कहा—हे देवि, हमारे सामने ऐसी घमंड की बात न कहो। तीनों

मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति ॥ १२० ॥ तदागच्छतु शुम्भोऽत्र निशुम्भो वा महासुरः । मां जित्वा किं चिरेणात्र पाणिं गृह्णातु मे लघु ॥ १२१ ॥

दूत उवाच ॥ १२२ ॥

अवलिप्तासि मैवं त्वं देवि ब्रूहि ममाग्रतः । त्रैलोक्ये कः पुमांस्तिष्ठेदग्रे शुम्भनिशुम्भयोः ॥ १२३ ॥ अन्येषामपि दैत्यानां

लोकों में ऐसा समर्थ पुरुष कौन है, जो युद्ध में शुम्भ-निशुम्भ के सामने ठहर सके ।। १२२-१२३ ।। उनसे युद्ध करना तो दूर रहा, दूसरे दैत्यों से भी देवता युद्ध नहीं कर

सकते। फिर तुम तो स्त्री हो और अकेली, कैसे उनसे युद्ध करोगी ॥ १२४ ॥ जिन शुम्भ आदि असुरों से इन्द्र आदि सब देवता मिलकर भी युद्ध न कर सके, तुम स्त्री होकर

सर्वे देवा न वै युधि। तिष्ठन्ति सम्मुखे देवि किं पुनः स्त्री त्वमेकिका ॥ १२४ ॥ इन्द्राद्याः सकला देवास्तस्थुर्येषां न संयुगे। शुम्भादीनां कथं तेषां स्त्री प्रयास्यसि सम्मुखम् ॥ १२५ ॥ सा त्वं गच्छ मयैवोक्ता पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः। केशाकर्षणनिर्धूतगौरवा मा गमिष्यसि ॥ १२६ ॥

उनके साथ कैसे युद्ध करोगी ॥ १२५ ॥ मेरा कहा मानो, तुम शुम्भ-निशुम्भ के पास चलो; नहीं तो कोई असुर आवेगा और तुम्हारा अपमान करके, तुम्हारे केश पकड़कर ले जायगा ॥ १२६ ॥ देवी ने उत्तर दिया—सत्य है, शुम्भ-निशुम्भ ऐसे ही पराक्रमी हैं;

पर क्या करूँ, मैं पहले बिना विचारे ऐसी प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ ।। १२७-१२८ ।। अब

देव्युवाच ।। १२७ ।।

एवमेतद् बली शुम्भो निशुम्भश्चातिवीर्यवान् । किं करोमि प्रतिज्ञा मे यदनालोचिता पुरा ।। १२८ ।। स त्वं गच्छ मयोक्तं ते यदेतत्सर्वमादृतः । तदाचक्ष्वासुरेन्द्राय स च युक्तं करोतु तत् ।। ॐ ।। १२९ ।।

तुम जाओ और जो कुछ मैंने कहा है, वह सब असुरों के स्वामी शुम्भ से कहो । वह जो उचित समझेंगे सो करेंगे ।। १२९ ।।

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
देव्या दूतसंवादो नाम पञ्चमोऽध्यायः ।। ५ ।।

उवाच ९, त्रिपान्मन्त्राः ६६, श्लोकाः ५४, एवम् १२९, एवमादितः ३८८ ।।

—: ० :—

षष्ठोऽध्यायः

धूम्रलोचन-वध

—:०:—

ध्यानम्

ॐ नागाधीश्वरविष्टरां फणिफणोत्तंसोरुरत्नावलीभास्वद्देह-लतां दिवाकरनिभां नेत्रत्रयोद्भासिताम् । मालाकुम्भकपालनीरजकरां चन्द्रार्धचूडां परां सर्वज्ञेश्वरभैरवाङ्कनिलयां पद्मावतीं चिन्तये ॥

मैं सर्वज्ञेश्वर भैरव के अङ्क में निवास करनेवाली परमोत्कृष्ट पद्मावती देवी का चिन्तन करता हूँ। माँ पद्मावती नागराज के आसन पर बैठी हैं, नागों के फणों में

सुशोभित होनेवाली मणियों की विशाल माला से उनकी देहलता उद्भासित हो रही है। सूर्य के सदृश उनका तेज है, तीन नेत्र उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। वे हाथों में माला, कुम्भ, कपाल और कमल लिये हुए हैं तथा उनके मस्तक में अर्द्धचन्द्र का मुकुट सुशोभित है।

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

इत्याकर्ण्य वचो देव्याः स दूतोऽमर्षपूरितः। समाचष्ट समागम्य दैत्यराजाय विस्तरात ॥ २ ॥ तस्य दूतस्य तद्वाक्यमाकर्ण्या-

मेधा ऋषि कहते हैं—हे सुरथ, देवी की ये बातें सुनकर वह दूत क्रुद्ध होकर लौटा। उसने दैत्यराज शुम्भ के पास जाकर देवी की कही हुई सब बातें विस्तार-पूर्वक कह सुनाईं ॥ १-२ ॥ दूत की बातें सुनते ही असुरराज शुम्भ कुपित होकर सेनापति धूम्र-

लोचन से बोला—हे धूम्रलोचन, तुम अपनी सेना लेकर शीघ्र जाओ और उस दुष्टा को बलपूर्वक केश पकड़कर ले आओ ॥ ३-४ ॥ यदि कोई उसके बचाने का उद्योग करे,

सुरराट् ततः । सक्रोधः प्राह दैत्यानामधिपं धूम्रलोचनम् ॥ ३ ॥
हे धूम्रलोचनाशु त्वं स्वसैन्यपरिवारितः । तामानय बलाद् दुष्टां केशाकर्षणविह्वलाम् ॥ ४ ॥ तत्परित्राणदः कश्चिद्यदि वोत्तिष्ठतेऽपरः । स हन्तव्योऽमरो वापि यक्षो गन्धर्व एव वा ॥ ५ ॥

चाहे वह देवता हो, चाहे यक्ष या गन्धर्व, उसे मार डालो ॥ ५ ॥ ऋषि कहते हैं—शुम्भ की आज्ञा पाकर धूम्रलोचन साठ हजार असुर लेकर शीघ्रता से हिमालय पर्वत पर गया ।

वहाँ देवी को देखकर ऊँचे स्वर से बोला तुम—शुम्भ-निशुम्भ के पास चलो ।। ६-८ ।। यदि प्रसन्नता से मेरे स्वामी के पास नहीं चलोगी तो तुम्हारे केश पकड़कर

ऋषिरुवाच ।। ६ ।।

तेनाज्ञप्तस्ततः शीघ्रं स दैत्यो धूम्रलोचनः । वृतः षष्ट्या सहस्राणामसुराणां द्रुतं ययौ ॥ ७ ॥ स दृष्ट्वा तां ततो देवीं तुहिनाचलसंस्थिताम् । जगादोच्चैः प्रयाहीति मूलं शुम्भनिशुम्भयोः ॥ ८ ॥ न चेत्प्रीत्याद्य भवती मद्भर्तारमुपैष्यति । ततो बलान्नयाम्येष केशाकर्षणविह्वलाम् ॥ ९ ॥

बलपूर्वक ले जाऊँगा ।। ९ ।। देवी ने कहा—तुम दैत्यराज की आज्ञा से सेना लेकर आये

हो और बलवान् भी हो। यदि बलपूर्वक मुझे ले जाओगे तो मैं क्या करूँगी ।। १०-११ ।।
ऋषि कहते हैं—देवी के यह कहने पर धूम्रलोचन क्रुद्ध होकर दौड़ा। तब अम्बिका ने

देव्युवाच ।। १० ।।

दैत्येश्वरेण प्रहितो बलवान् बलसंवृतः। बलान्नयसि मामेवं ततः किं ते करोम्यहम् ॥ ११ ॥

ऋषिरुवाच ।। १२ ।।

इत्युक्तः सोऽभ्यधावत्तामसुरो धूम्रलोचनः। हुंकारेणैव तं भस्म सा चकाराम्बिका ततः ॥ १३ ॥ अथ क्रुद्धं महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका। ववर्ष सायकैस्तीक्ष्णैस्तथा शक्तिपरश्वधैः ॥१४॥

हुंकार करके उसे भस्म कर दिया ।। १२-१३ ।। यह देखकर असुरों की सेना कुपित होकर देवी पर शक्ति, परशु और तीक्ष्ण बाण बरसाने लगी ।। १४ ।। देवी का वाहन सिंह

बड़े क्रोध से गरजकर गर्दन के बाल हिलाता हुआ असुरों की सेना में घुस गया ।। १५ ।।
उसने किसी को थप्पड़ से, किसी को मुँह के थपेड़ से, किसी को झपटने के वेग से
और किसी को होठ से धक्का देकर मार डाला ।। १६ ।। किसी का नख से पेट फाड़

ततो धुतसटः कोपात्कृत्वा नादं सुभैरवम् । पपातासुरसेनायां सिंहो
देव्याः स्ववाहनः ॥ १५ ॥ कांश्चित् करप्रहारेण दैत्यानास्येन
चापरान् । आक्रम्य चाधरेणान्यान् स जघान महासुरान् ॥ १६ ॥
केषांचित्पाटयामास नखैः कोष्ठानि केसरी । तथा तलप्रहारेण
शिरांसि कृतवान् पृथक् ॥ १७ ॥ विच्छिन्नबाहुशिरसः कृतास्तेन
तथापरे । पपौ च रुधिरं कोष्ठादन्येषां धुतकेसरः ॥ १८ ॥ क्षणेन

डाला और किसी का सिर थप्पड़ मारकर धड़ से अलग कर दिया ।। १७ ।। कितने ही
असुरों के सिर और बाहु काट डाला और कितनों के पेट फाड़कर रुधिर पी लिया ।। १८ ।।

इस प्रकार देवी के वाहन सिंह ने क्रुद्ध होकर क्षणभर में असुरों की सेना का संहार कर दिया ॥ १९ ॥ देवी के हाथ से धूम्रलोचन का मरना और उनके वाहन सिंह द्वारा सेना का विनाश सुनकर क्रोध के मारे दैत्यराज शुम्भ का अधर (नीचे का होठ)

तद्बलं सर्वं क्षयं नीतं महात्मना। तेन केसरिणा देव्या वाहनेनातिकोपिना ॥ १९ ॥ श्रुत्वा तमसुरं देव्या निहतं धूम्रलोचनम् । बलं च क्षयितं कृत्स्नं देवीकेसरिणा ततः ॥ २० ॥ चुकोप दैत्याधिपतिः शुम्भः प्रस्फुरिताधरः । आज्ञापयामास च तौ चण्डमुण्डौ महासुरौ ॥ २१ ॥ हे चण्ड हे मुण्ड बलैर्बहुभिः परिवारितौ । तत्र गच्छत गत्वा च सा समानीयतां लघु ॥ २२ ॥ केशेष्वाकृष्य

काँपने लगा। उसने चण्ड-मुण्ड को आज्ञा दी—हे चण्ड-मुण्ड, तुम बहुत बड़ी सेना लेकर जाओ और उस स्त्री को शीघ्र पकड़ लाओ ॥ २०-२२ ॥ केश पकड़कर या बाँध-

कर ले आना। यदि ऐसा न हो सके तो सब दैत्य मिलकर अस्त्रों से उसे मार डालें॥ २३॥

बद्ध्वा वा यदि वः संशयो युधि। तदाशेषायुधैः सर्वैरसुरैर्विनिहन्यताम्॥ २३॥ तस्यां हतायां दुष्टायां सिंहे च विनिपातिते। शीघ्रमागम्यतां बद्ध्वा गृहीत्वा तामथाम्बिकाम्॥ ॐ॥ २४॥

उस दुष्टा के मारे जाने पर उसके वाहन सिंह को भी मार डालना। किन्तु जहाँ तक हो सके उसे पकड़कर बाँधकर जीवित ले आना॥ २४॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये शुम्भनिशुम्भसेनानीधूम्रलोचनवधो नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

उवाच ४, श्लोकाः २०, एवम् २४, एवमादितः ४१२॥

—:o:—

सप्तमोऽध्यायः

चण्ड तथा मुण्ड का वध

ध्यानम्

'ॐ' ध्यायेयं रत्नपीठे शुककलपठितं शृण्वतीं श्यामलाङ्गीं न्यस्तैकाङ्‌घ्रिं सरोजे शशिशकलधरां वल्लकीं वादयन्ताम् । कह्लाराबद्धमालां नियमितविलसच्चोलिकां रक्तवस्त्रां मातङ्गीं शङ्खपात्रां मधुरमधुमदां चित्रकोद्भासिभालाम् ॥

मैं मातङ्गी देवी का ध्यान करता हूँ। माता रत्नमय सिंहासन पर बैठकर पढ़ते हुए तोते का मधुर शब्द सुन रही हैं। मातङ्गी देवी श्याम वर्ण की शरीर वाली

हैं। वे अपना एक पैर कमल पर रक्खे हुए हैं और मस्तक पर अर्द्धचन्द्र धारण करती हैं। कह्लार पुष्पों की माला धारण किये वीणा बजाती हैं। उनके अङ्ग में कसी हुई चोली शोभा पा रही है। लाल रंग की साड़ी पहने हाथ में शङ्ख मय का पात्र लिये हुए हैं। उनके बदन पर मधु का हल्का-हल्का नशा जान पड़ता है और ललाट में बेंदी शोभा दे रही है।

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

आज्ञप्तास्ते ततो दैत्याश्चण्डमुण्डपुरोगमाः। चतुरङ्गबलोपेता ययुरभ्युद्यतायुधाः ॥ २ ॥ ददृशुस्ते ततो देवीमीषद्धासां व्यवस्थि-

मेधा ऋषि कहते हैं—हे सुरथ,शुम्भ की आज्ञा पाकर चण्ड और मुण्ड चतुरङ्गिणी सेना लेकर देवी को पकड़ने के लिए चले ॥ १-२ ॥ असुरों ने जाकर हिमालय पर्वत के

शिखर पर सिंह पर सवार मुस्कराती हुई देवी को देखा ॥ ३॥ वे धनुष और खड्ग आदि अस्त्र-शस्त्र लेकर देवी के समीप गये और उनको पकड़ने का उद्योग करने लगे।। ४ ।। तब देवी को उन शत्रुओं पर बड़ा क्रोध आया। क्रोध के मारे उनका मुँह काला हो गया ।। ५ ।।

ताम् । सिंहस्योपरि शैलेन्द्रशृङ्गे महति काञ्चने ॥ ३ ॥ ते दृष्ट्वा तां समादातुमुद्यमं चक्रुरुद्यताः । आकृष्टचापासिधरास्तथान्ये तत्समीपगाः ॥ ४ ॥ ततः कोपं चकारोच्चैरम्बिका तानरीन् प्रति । कोपेन चास्या वदनं मषीवर्णमभूत्तदा ॥ ५ ॥ भ्रुकुटीकुटिलात्तस्या ललाटफलकाद्द्रुतम् । काली करालवदना विनिष्क्रान्तासि-

उसी समय उनके भृकुटीकुटिल-ललाट से काली प्रकट हो गई। काली का मुँह भयानक था, हाथों में खड्ग, पाश और विचित्र खट्वाङ्ग (मुर्दे का पञ्जर अथवा खाट की पट्टी) लिये थीं। मुण्डमाला पहिने और बाघ की खाल ओढ़े थीं। विना मांस की उनकी

सूखी देह बड़ी भयानक थी ॥ ६-७ ॥ मुँह फैलाये और बड़ी लम्बी जीभ काढ़े थीं। लाल-लाल आँखें गड्ढे में घुसी थीं। उनके गरजने का शब्द सब दिशाओं में फैल गया ॥ ८ ॥ वह बड़े वेग से असुरों की सेना पर झपटीं और वड़े-बड़े असुरों पर प्रहार

पाशिनी ॥ ६ ॥ विचित्रखट्वाङ्गधरा नरमालाविभूषणा । द्वीपि-चर्मपरीधाना शुष्कमांसातिभैरवा ॥ ७ ॥ अतिविस्तारवदना जिह्वाललनभीषणा । निमग्नारक्तनयना नादापूरितदिङ्मुखा ॥ ८ ॥ सा वेगेनाभिपतिता घातयन्ती महासुरान् । सैन्ये तत्र सुरारीणामभक्षयत तद्बलम् ॥ ९ ॥ पार्ष्णिग्राहाङ्कुशग्राहियोधघण्टासमन्वितान् । समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप वारणान् ॥ १० ॥ तथैव योधं तुरगै

करती हुई उनकी सेना का भक्षण करने लगीं ॥ ९ ॥ काली ने एक ही हाथ से महावत, सवार और घंटा समेत हाथियों को पकड़कर अपने मुँह में डाल लिया ॥ १० ॥ उसी प्रकार

घोड़ों, सवारों और सारथियों-सहित रथों को भी मुँह में डालकर दाँतों से चबा डाला ॥ ११ ॥ किसी के केश पकड़कर, किसी का गला दबाकर, किसी को छाती का धक्का देकर और किसी को पैर से दबाकर मार डाला ॥ १२ ॥ देवी ने कुपित होकर, असुरों

रथं सारथिना सह । निक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्वयन्त्यतिभैरवम् ॥११॥
एकं जग्राह केशेषु ग्रीवायामथ चापरम् । पादेनाक्रम्य चैवान्यमु-
रसान्यमपोथयत् ॥ १२ ॥ तैर्मुक्तानि च शस्त्राणि महास्त्राणि
तथासुरैः । मुखेन जग्राह रुषा दशनैर्मथितान्यपि ॥ १३ ॥ बलिनां
तद् बलं सर्वमसुराणां दुरात्मनाम् । ममर्दाभक्षयच्चान्यानन्यांश्चा-
ताडयत्तथा ॥ १४ ॥ असिना निहताः केचित्केचित्खट्वाङ्ग-

के चलाये हुए अस्त्र-शस्त्र मुँह में लेकर दाँतों से पीस डाला ॥ १३ ॥ बड़े-बड़े बलवान् दुरात्मा असुरों को रौंद डाला। बहुतों को घायल कर दिया और बहुतों को खा लिया ॥ १४ ॥

कितने ही असुर तलवार की मार से, कितने ही खट्वाङ्ग की मार से और कितने ही दाँतों से नोच डालने से मर गये ॥ १५ ॥ इस प्रकार क्षणभर में असुरों की सेना का विनाश देखकर महासुर चण्ड अति भयानक काली की ओर दौड़ा ॥ १६ ॥ मुण्ड ने भी

ताडिताः। जग्मुर्विनाशमसुरा दन्ताग्राभिहतास्तथा ॥ १५ ॥
क्षणेन तद् बलं सर्वमसुराणां निपातितम्। दृष्ट्वा चण्डोऽभिदुद्राव
तां कालीमतिभीषणाम् ॥ १६ ॥ शरवर्षैर्महाभीमैर्भीमाक्षीं तां
महासुरः। छादयामास चक्रैश्च मुण्डः क्षिप्तैः सहस्रशः ॥ १७ ॥
तानि चक्राण्यनेकानि विशमानानि तन्मुखम्। बभुर्यथार्कबिम्बानि

भयंकर बाणों की वर्षा करके और हजारों चक्र फेंककर भयानक आँखोंवाली काली को ढक दिया ॥ १७ ॥ वे चक्र काली के मुँह में प्रविष्ट होकर ऐसे शोभित हुए, जैसे बादलों

में सूर्य-मंडल शोभित हों ॥ १८ ॥ काली बड़े क्रोध से भयंकर मुँह और दाँत दिखाकर और भयानक शब्द से गरजकर हँसने लगीं और एक बड़ी तलवार उठाकर 'हं' शब्द करके चण्ड की ओर दौड़ीं। देवी ने केश पकड़कर तलवार से उसका सिर काट

सुबहूनि घनोदरम् ॥ १८ ॥ ततो जहासातिरुषा भीमं भैरवनादिनी। काली करालवक्त्रान्तर्दुर्दर्शदशनोज्ज्वला ॥ १९ ॥ उत्थाय च महासिं हं देवी चण्डमधावत। गृहीत्वा चास्य केशेषु शिरस्तेनासिनाच्छिनत् ॥ २० ॥ अथ मुण्डोऽभ्यधावत्तां दृष्ट्वा चण्डं निपातितम्। तमप्यपातयद्भूमौ सा खड्गाभिहतं रुषा ॥ २१ ॥ हतशेषं ततः सैन्यं दृष्ट्वा चण्डं निपातितम्।

डाला ॥ १९-२० ॥ चण्ड को मरा हुआ देखकर मुण्ड दौड़ा। काली ने उसे भी तलवार से मारकर पृथ्वी पर गिरा दिया ॥ २१ ॥ इस प्रकार चण्ड-मुण्ड के मारे जाने पर

बाकी सेना डरकर भाग गई ॥ २२ ॥ उसके बाद काली चण्ड और मुण्ड का सिर लेकर चण्डिका के पास गईं और हँसकर बोलीं—मैं चण्ड और मुण्ड, दो महापशुओं को मार-

मुण्डं च सुमहावीर्यं दिशो भेजे भयातुरम् ॥ २२ ॥ शिरश्चण्डस्य काली च गृहीत्वा मुण्डमेव च । प्राह प्रचण्डाट्टहासमिश्रमभ्येत्य चण्डिकाम् ॥ २३ ॥ मया तवात्रोपहृतौ चण्डमुण्डौ महापशू । युद्धयज्ञे स्वयं शुम्भं निशुम्भं च हनिष्यसि ॥ २४ ॥

ऋषिरुवाच ॥ २५ ॥

तावानीतौ ततो दृष्ट्वा चण्डमुण्डौ महासुरौ । उवाच काली

कर आपकी भेंट करती हूँ । अब शुम्भ और निशुम्भ को आप स्वयं मारिए ॥ २३-२४ ॥ मेधा ऋषि कहते हैं—हे राजन्, महासुर, चण्ड-मुण्ड को देखकर चण्डिका देवी ने काली

से कहा—तुम चण्ड और मुण्ड को मारकर मेरे सामने लाई हो, इसलिए हे देवि, अब

कल्याणी ललितं चण्डिका वचः ।। २६ ।। यस्माच्चण्डं च मुण्डं च गृहीत्वा त्वमुपागता । चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देवि भविष्यसि ।। ॐ ।। २७ ।।

तुम चामुण्डा नाम से जगत् में विख्यात होगी ।। २५-२७ ।।

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये चण्डमुण्डवधो नाम सप्तमोऽध्यायः ।। ७ ।।

उवाच २, श्लोकाः २५, एवम् २७, एवमादितः ४३९ ।।

—:०:—

अष्टमोऽध्यायः

—: ० :—

रक्तबीज का वध

ध्यानम्

ॐ अरुणां करुणातरङ्गिताक्षीं धृतपाशाङ्कुशबाणचाप-
हस्ताम् । अणिमादिभिरावृतां मयूखैरहमित्येव विभावये भवानीम् ।।

मैं अणिमा आदि सिद्धिमयी किरणों से आवृत भवानी का ध्यान करता हूँ। भवानी का शरीर लाल रंग के समान है। नेत्रों में करुणा लहरा रही है तथा हाथों में पाश, अङ्कुश, बाण और धनुष शोभा पाते हैं।

—: ० :—

मेधा ऋषि कहते हैं—हे सुरथ, जब काली ने चण्ड-मुण्ड को उनकी सेना के साथ मार डाला, तब असुरराज महाप्रतापी शुम्भ ने कुपित होकर दैत्यों की सेना को आज्ञा

ॐ ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

चण्डे च निहते दैत्ये मुण्डे च विनिपातिते। बहुलेषु च सैन्येषु क्षयितेष्वसुरेश्वरः ॥ २ ॥ ततः कोपपराधीनचेताः शुम्भः प्रतापवान्। उद्योगं सर्वसैन्यानां दैत्यानामादिदेश ह ॥ ३ ॥ अद्य सर्वबलैर्दैत्याः षडशीतिरुदायुधाः। कम्बूनां चतुरशीतिर्निर्यान्तु स्वबलैर्वृताः ॥ ४ ॥ कोटिवीर्याणि पञ्चाशदसुराणां कुलानि वै।

दी। उदायुध नाम के छियासी बलवान् दैत्य, और कम्बू नाम के चौरासी दैत्य अपनी सेना लेकर युद्ध में चलें ॥ १-४ ॥ कोटिवीर्य कुल के पचास, और धूम्रवंश के सौ असुर

तैयार होकर लड़ने के लिए चलें ॥ ५ ॥ काल, दौर्हृद और मौर्यवंश के असुर तथा कालिका के पुत्र भी मेरी आज्ञा से शीघ्र तैयार होकर निकलें॥ ६ ॥ यह आज्ञा देकर कठोर शासन करनेवाला असुरराज शुम्भ हजारों बड़ी-बड़ी सेनाएँ लेकर युद्ध के लिए

शतं कुलानि धौम्राणां निर्गच्छन्तु ममाज्ञया ॥ ५ ॥ कालका दौर्हृदा मौर्याः कालकेयास्तथासुराः । युद्धाय सज्जा निर्यान्तु आज्ञया त्वरिता मम ॥ ६ ॥ इत्याज्ञाप्यासुरपतिः शुम्भो भैरव-शासनः । निर्जगाम महासैन्यसहस्रैर्बहुभिर्वृतः ॥ ७ ॥ आयान्तं चण्डिका दृष्ट्वा तत्सैन्यमतिभीषणम् । ज्यास्वनैः पूरयामास धरणी-गगनान्तरम् ॥ ८ ॥ ततः सिंहो महानादमतीव कृतवान् नृप ।

गया ॥ ७ ॥ चण्डिका देवी ने उसकी भयानक सेना देखकर अपना धनुष चढ़ाया । उनके धनुष की ज्या का शब्द आकाश और पृथ्वी में फैल गया ॥ ८ ॥ उसी समय देवी

का वाहन सिंह भी गरजा, और देवी ने घंटा बजाकर सिंह के गरजने और धनुष की ज्या के शब्द को और भी बढ़ा दिया ॥ ९ ॥ इस भाँति धनुष की ज्या का शब्द, सिंह के गरजने का शब्द और घंटा का शब्द सब दिशाओं में फैल गया। उसी समय काली

घण्टास्वनेन तन्नादमम्बिका चोपबृंहयत् ॥ ९ ॥ धनुर्ज्यासिंह-घण्टानां नादापूरितदिङ्मुखा। निनादैर्भीषणैः काली जिग्ये विस्तारितानना ॥ १० ॥ तं निनादमुपश्रुत्य दैत्यसैन्यैश्चतुर्दिशम्। देवी सिंहस्तथा काली सरोषैः परिवारिताः ॥ ११ ॥ एतस्मिन्नन्तरे भूप विनाशाय सुरद्विषाम्। भवायामरसिंहानामतिवीर्यबला-

भी मुँह फैलाकर भयंकर नाद से गरजीं। उनके गरजने का शब्द उससे भी बढ़कर हुआ ॥ १० ॥ वह शब्द सुनकर दैत्यों की सेना ने बड़े क्रोध से चण्डिका, काली और सिंह को घेर लिया ॥ ११ ॥ राजन्, उसी समय असुरों का विनाश और देवताओं का

कल्याण करने के लिए ब्रह्मा, शिव, स्वामिकार्त्तिक, विष्णु और इन्द्र की शक्तियाँ उन्हीं की देह से निकलकर और उन्हीं देवताओं का रूप धारण करके चण्डिका के पास आईं ॥ १२-१३ ॥ जिस देवता का जैसा रूप है और जैसा आभूषण और वाहन है,

न्विताः ॥ १२ ॥ ब्रह्मेशगुहविष्णूनां तथेन्द्रस्य च शक्तयः । शरीरेभ्यो विनिष्क्रम्य तद्रूपैश्चण्डिकां ययुः ॥ १३ ॥ यस्य देवस्य यद्रूपं यथाभूषणवाहनम् । तद्वदेव हि तच्छक्तिरसुरान् योद्धुमाययौ ॥ १४ ॥ हंसयुक्तविमानाग्रे साक्षसूत्रकमण्डलुः । आयाता ब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणी साभिधीयते ॥ १५ ॥ माहेश्वरी वृषारूढा त्रिशूलवर-

उसकी शक्ति भी वैसा ही रूप, आभूषण और वाहन लेकर असुरों से युद्ध करने के लिए आई ॥ १४ ॥ ब्रह्मा की शक्ति ब्रह्माणी, हाथ में कमण्डलु और अक्षमाला लिये हुए हंस-युक्त विमान पर बैठकर आईं ॥ १५ ॥ महेश्वर की शक्ति माहेश्वरी त्रिशूल धारण करके

बैल पर चढ़कर आईं। उनके हाथ में साँप लिपटा था और ललाट में चन्द्ररेखा शोभित थी ॥ १६ ॥ कार्त्तिकेय की शक्ति कौमारी, हाथ में शक्ति लेकर, मोर, पर चढ़कर दैत्यों से युद्ध करने के लिए आईं ॥ १७ ॥ विष्णु की शक्ति वैष्णवी शंख, चक्र, गदा, धनुष और

धारिणी। महाहिवलया प्राप्ता चन्द्ररेखाविभूषणा ॥ १६ ॥ कौमारी शक्तिहस्ता च मयूरवरवाहना। योद्धुमभ्याययौ दैत्यानम्बिका गुहरूपिणी ॥ १७ ॥ तथैव वैष्णवी शक्तिर्गरुडोपरि संस्थिता। शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गखड्गहस्ताभ्युपाययौ ॥ १८ ॥ यज्ञवाराहमतुलं रूपं या बिभ्रतो हरेः। शक्तिः साप्याययौ तत्र वाराहीं बिभ्रती तनुम् ॥ १९ ॥ नारसिंही नृसिंहस्य बिभ्रती सदृशं वपुः। प्राप्ता

खड्ग लेकर गरुड़ पर सवार होकर आईं ॥१८॥ वाराहरूप भगवान् विष्णु की शक्ति वाराही रूप धारण करके आईं ॥ १९ ॥ नारसिंही नृसिंह के समान रूप धारण करके आईं,

उनकी गर्दन के बाल हिलने से नक्षत्र हिलने लगे ।। २० ।। इन्द्र की शक्ति इन्द्राणी हाथ में वज्र लेकर, सहस्र नेत्रों से शोभित होकर, इन्द्र के समान रूप धारण करके ऐरावत पर सवार होकर आईं ।। २१ ।। उन देवशक्तियों के बीच में खड़े होकर शिवजी ने चण्डिका

तत्र सटाक्षेपक्षिप्तनक्षत्रसंहतिः ॥ २० ॥ वज्रहस्ता तथैवैन्द्री गज-राजोपरि स्थिता । प्राप्ता सहस्रनयना यथा शक्रस्तथैव सा ॥ २१ ॥ ततः परिवृतस्ताभिरीशानो देवशक्तिभिः । हन्यन्तामसुराः शीघ्रं मम प्रीत्याऽऽह चण्डिकाम् ।। २२ ।। ततो देवीशरीरात्तु विनिष्क्रान्ता-तिभीषणा । चण्डिकाशक्तिरत्युग्रा शिवाशतनिनादिनी ।। २३ ।।

से कहा कि असुरों को शीघ्र मारकर मुझे प्रसन्न करो ।। २२ ।। उसी समय चण्डिका देवी के शरीर से अति भयानक शक्ति उत्पन्न हुई । उनके साथ ही सैकड़ों सियारिनें भी पैदा होकर चिल्लाने लगीं ।। २३ ।। उस अपराजिता देवी ने धूम्रवर्ण जटाओं से शोभित

शिवजी से कहा—भगवन्, आप दूतरूप से शुम्भ-निशुम्भ के पास जाइए ॥ २४ ॥ अतिगर्वित शुम्भ-निशुम्भ से, और युद्ध के लिए उपस्थित अन्य दानवों से कहिये कि तुम लोग यदि जीवित रहना चाहते हो, तो पाताल को चले जाओ। अब इन्द्र तीनों लोकों

सा चाह धूम्रजटिलमीशानमपराजिता। दूत त्वं गच्छ भगवन् पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः ॥ २४ ॥ ब्रूहि शुम्भं निशुम्भं च दानवावतिगर्वितौ। ये चान्ये दानवास्तत्र युद्धाय समुपस्थिताः ॥ २५ ॥ त्रैलोक्यमिन्द्रो लभतां देवाः सन्तु हविर्भुजः। यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ ॥ २६ ॥ बलावलेपादथ चेद्भवन्तो युद्धका-

का राज्य पावें और देवता अपना-अपना यज्ञ-भाग लें ॥ २५-२६ ॥ और यदि तुम अपने बल के दर्प से युद्ध करना चाहते हो, तो आवो, तुम्हारे मांस से हमारी सियारिनें तृप्त

हों ॥ २७ ॥ देवी ने शिवजी को दूत-कार्य में नियुक्त किया; इसलिये वह शिवदूती नाम से प्रसिद्ध हुईं ॥ २८ ॥ शिव के मुँह से देवी की यह बात सुनकर, सब दैत्य कुपित होकर

ङ्क्षिणः। तदागच्छत तृप्यन्तु मच्छिवाः पिशितेन वः ॥ २७ ॥
यतो नियुक्तो दौत्येन तया देव्या शिवः स्वयम्। शिवदूतीति
लोकेऽस्मिंस्ततः सा ख्यातिमागता ॥ २८ ॥ तेऽपि श्रुत्वा वचो
देव्याः शर्वाख्यातं महासुराः। अमर्षापूरिता जग्मुर्यत्र कात्यायनी
स्थिता ॥ २९ ॥ ततः प्रथममेवाग्रे शरशक्त्यृष्टिवृष्टिभिः। ववर्षुरुद्ध-
तामर्षास्तां देवीममरारयः ॥ ३० ॥ सा च तान् प्रहितान् बाणाञ्छू-

देवी के पास गये ॥ २९ ॥ क्रोध से व्याकुल वे असुर बाण, शक्ति और ऋष्टि, देवी पर बरसाने लगे ॥ ३० ॥ देवी ने उनके चलाये हुए बाण, शूल, शक्ति और परशु आदि अस्त्रों

को अपने बाणों से अनायास काटकर गिरा दिया ।। ३१ ।। देवी के सामने ही काली शत्रुओं को शूल और खट्वाङ्ग से मारती हुई युद्धभूमि में विचरने लगीं ।। ३२ ।। ब्रह्माणी

त्शक्तिपरश्वधान् । चिच्छेद लीलयाऽऽध्मातधनुर्मुक्तैर्महेषुभिः ॥३१॥
तस्याग्रतस्तथा काली शूलपातविदारितान् । खट्वाङ्गपोथितांश्चारीन्
कुर्वती व्यचरत्तदा ॥ ३२ ॥ कमण्डलुजलाक्षेपहतवीर्यान् हतौजसः ।
ब्रह्माणी चाकरोच्छत्रून् येन येन स्म धावति ॥ ३३ ॥ माहेश्वरी
त्रिशूलेन तथा चक्रेण वैष्णवी । दैत्याञ्जघान कौमारी तथा शक्त्या-

जिधर जाती थीं उधर कमण्डलु से जल छिड़ककर, शत्रुओं को निर्बल और निस्तेज कर देती थीं ।। ३३ ।। माहेश्वरी ने त्रिशूल से, वैष्णवी ने चक्र से, और कौमारी ने क्रुद्ध

होकर शक्ति से दानवों का संहार किया ॥ ३४ ॥ इन्द्राणी ने वज्र के प्रहार से सैकड़ों दानवों को मार डाला। वे रुधिर बरसाते हुए पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ ३५ ॥ वाराही ने दानवों की छाती में दाँत मारकर घायल कर दिया। बहुतों को थूथन से मार डाला

तिकोपना ॥ ३४ ॥ ऐन्द्रीकुलिशपातेन शतशो दैत्यदानवाः।
पेतुर्विदारिताः पृथ्व्यां रुधिरौघप्रवर्षिणः ॥ ३५ ॥ तुण्डप्रहार-
विध्वस्ता दंष्ट्राग्रक्षतवक्षसः। वाराहमूर्त्या न्यपतंश्चक्रेण च
विदारिताः ॥ ३६ ॥ नखैर्विदारितांश्चान्यान् भक्षयन्ती महासुरान्।
नारसिंही चचाराजौ नादापूर्णदिगम्बरा ॥ ३७ ॥ चण्डाट्टहासैर-

और बहुतों को चक्र के प्रहार से मारकर गिरा दिया ॥ ३६ ॥ नारसिंही ने नखों से फाड़कर बहुत-से असुरों को खा लिया। फिर वह गरजकर युद्धभूमि में घूमने लगीं। उनके गरजने का शब्द आकाश और सब दिशाओं में फैल गया ॥ ३७ ॥ शिवदूती भी भया-

नक अट्टहास करके असुरों को पृथ्वी पर गिराकर भक्षण करने लगीं ॥ ३८ ॥ इस तरह देवियों ने कुपित होकर अनेक उपाय से बड़े-बड़े असुरों का विनाश कर दिया। यह देखकर दैत्यों की सेना भागने लगी ॥ ३९ ॥ देवियों की मार से पीड़ित

सुराः शिवदूत्यभिदूषिताः । पेतुः पृथिव्यां पतितांस्तांश्चखादाथ सा तदा ॥ ३८ ॥ इति मातृगणं क्रुद्धं मर्दयन्तं महासुरान् । दृष्ट्वाभ्युपायैर्विविधैर्नेशुर्देवारिसैनिकाः ॥ ३९ ॥ पलायनपरान् दृष्ट्वा दैत्यान् मातृगणार्दितान् । योद्धुमभ्याययौ क्रुद्धो रक्तबीजो महासुरः ॥ ४० ॥ रक्तबिन्दुर्यदा भूमौ पतत्यस्य शरीरतः । समुत्पतति मेदिन्यां

सेना को भागते देखकर रक्तबीज नाम का असुर क्रुद्ध होकर युद्ध करने के लिए आया ॥ ४० ॥ उसकी देह से जब एक बूँद रुधिर पृथ्वी पर गिरता था तब उसी के समान

दूसरा असुर पैदा हो जाता था ।। ४१ ।। रक्तबीज हाथ में गदा लेकर इन्द्राणी से युद्ध
करने लगा । इन्द्राणी ने रक्तबीज पर वज्र का प्रहार किया ।। ४२ ।। वज्र लगने से उसकी
देह से बहुत-सा रुधिर गिरा और उसी के समान पराक्रमी असुर पैदा हो गये ।। ४३ ।।

**तत्प्रमाणस्तदासुरः ॥ ४१ ॥ युयुधे स गदापाणिरिन्द्रशक्त्या
महासुरः । ततश्चैन्द्री स्ववज्रेण रक्तबीजमताडयत् ॥ ४२ ॥ कुलिशे-
नाहतस्याशु बहु सुस्राव शोणितम् । समुत्तस्थुस्ततो योधास्तद्रूपास्त-
त्पराक्रमाः ॥ ४३ ॥ यावन्तः पतितास्तस्य शरीराद्रक्तबिन्दवः ।
तावन्तः पुरुषा जातास्तद्वीर्यबलविक्रमाः ॥ ४४ ॥ ते चापि युयुधु-**

उसके शरीर से रुधिर के जितने बूँद गिरते थे, उतने ही पुरुष, वैसे ही बलवान् और
पराक्रमी पैदा हो जाते थे ।। ४४ ।। रुधिर से उत्पन्न असुर तीक्ष्ण अस्त्र-शस्त्र बरसाकर

देवियों से युद्ध करने लगे ॥ ४५ ॥ उसके बाद जब इन्द्राणी ने वज्र मारकर रक्तबीज का सिर फोड़ दिया और उससे रुधिर बहने लगा तब हजारों असुर पैदा हो गये ॥ ४६ ॥ वैष्णवी ने चक्र से, और इन्द्राणी ने गदा से रक्तबीज को मारा ॥ ४७ ॥ वैष्णवी का चक्र

स्तत्र पुरुषा रक्तसम्भवाः । समं मातृभिरत्युग्रशस्त्रपातातिभीषणम् ॥ ४५ ॥ पुनश्च वज्रपातेन क्षतमस्य शिरो यदा । ववाह रक्तं पुरुषास्ततो जाताः सहस्रशः ॥ ४६ ॥ वैष्णवी समरे चैनं चक्रेणाभिजघान ह । गदया ताडयामास ऐन्द्री तमसुरेश्वरम् ॥४७॥ वैष्णवीचक्रभिन्नस्य रुधिरस्रावसम्भवैः । सहस्रशो जगद्व्याप्तं तत्प्रमाणैर्महासुरैः ॥ ४८ ॥ शक्त्या जघान कौमारी वाराही च

लगने से, रक्तबीज की देह से जो रुधिर निकला, उससे उसी के समान हजारों असुर पैदा होकर संसार में भर गये ॥ ४८ ॥ कौमारी ने शक्ति से, वाराही ने तलवार से और

माहेश्वरी ने त्रिशूल से महासुर रक्तबीज को मारा ॥ ४९ ॥ रक्तबीज ने भी कुपित होकर सब देवियों पर गदा का प्रहार किया ॥ ५० ॥ शक्ति और शूल आदि के लगने से, उस असुर की देह से रुधिर की जो बूँदें पृथ्वी पर गिरीं उनसे सैकड़ों असुर पैदा हो गये ॥ ५१ ॥

तथासिना । माहेश्वरी त्रिशूलेन रक्तबीजं महासुरम् ॥ ४९ ॥ स चापि गदया दैत्यः सर्वा एवाहनत् पृथक् । मातृः कोपसमाविष्टो रक्तबीजो महासुरः ॥ ५० ॥ तस्याहतस्य बहुधा शक्तिशूलादिभिर्भुवि । पपात यो वै रक्तौघस्तेनासञ्छतशोऽसुराः ॥ ५१ ॥ तैश्चासुरासृक्सम्भूतैरसुरैः सकलं जगत् । व्याप्तमासीत्ततो देवा भयमाजग्मुरुत्तमम् ॥ ५२ ॥ तान् विषण्णान् सुरान् दृष्ट्वा चण्डिका प्राह

रक्तबीज के रुधिर से उत्पन्न असुरों से सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो गया । यह देखकर देवता बहुत डरे ॥ ५२ ॥ देवताओं को भयभीत देखकर चण्डिका ने काली से कहा—हे

चामुण्डे, अपना मुँह फैलाओ, और मेरे शस्त्र लगने से इसकी देह से जो रुधिर की बूँदें गिरें, उनको पी लो, और यदि उनसे असुर पैदा हो जायँ तो उनको खा लो ।। ५३-५४ ।।

सत्वरा । उवाच कालीं चामुण्डे विस्तीर्णं वदनं कुरु ॥ ५३ ॥ मच्छस्त्रपातसम्भूतान् रक्तबिन्दून्महासुरान् । रक्तबिन्दोः प्रतीच्छ त्वं वक्त्रेणानेन वेगिना ॥ ५४ ॥ भक्षयन्ती चर रणे तदुत्पन्नान्महासुरान् । एवमेष क्षयं दैत्यः क्षीणरक्तो गमिष्यति ॥ ५५ ॥ भक्ष्यमाणास्त्वया चोग्रा न चोत्पत्स्यन्ति चापरे । इत्युक्त्वा तां ततो

इस प्रकार तुम असुरों को भक्षण करती हुई युद्धभूमि में विचरो । जब इस दैत्य का रुधिर क्षीण हो जायगा, तब यह मर जायगा ।। ५५ ।। तुम भक्षण करती रहोगी तो असुर

नहीं पैदा हो सकेंगे। चण्डिका ने काली से यह कहकर रक्तबीज को शूल से मारा ॥५६॥ शूल के लगने से उसके शरीर से जो रुधिर गिरा उसे काली ने अपने मुँह में ले लिया। फिर उस दैत्य ने चण्डिका को गदा से मारा ॥ ५७ ॥ गदा लगने से देवी के शरीर में कुछ

देवी शूलेनाभिजघान तम् ॥ ५६ ॥ मुखेन काली जगृहे रक्तबीजस्य शोणितम्। ततोऽसावाजघानाथ गदया तत्र चण्डिकाम् ॥ ५७ ॥ न चास्या वेदनां चक्रे गदापातोऽल्पिकामपि। तस्याहतस्य देहात्तु बहु सुस्राव शोणितम् ॥ ५८ ॥ यतस्ततस्तद्वक्त्रेण चामुण्डा सम्प्र-

भी पीड़ा नहीं हुई, किन्तु देवी का शूल लगने से उसकी देह से बहुत रुधिर बहा ॥ ५८ ॥ काली ने मुँह फैलाकर उस रुधिर को पी लिया। उस रुधिर से जो असुर पैदा हुए

उनको भी खा लिया । देवी ने शूल, वज्र, बाण, तलवार और ऋष्टि मारकर रक्तबीज को जिसका रुधिर काली ने पी लिया था, मार डाला । शस्त्रों के

तीच्छति । मुखे समुद्गता येऽस्या रक्तपातान्महासुराः ॥ ५९ ॥ तांश्चखादाथ चामुण्डा पपौ तस्य च शोणितम् । देवी शूलेन वज्रेण बाणैरसिभिर्ऋष्टिभिः ॥ ६० ॥ जघान रक्तबीजं तं चामुण्डापीत-शोणितम् । स पपात महीपृष्ठे शस्त्रसङ्घसमाहतः ॥ ६१ ॥ नीरक्तश्च महीपाल रक्तबीजो महासुरः । ततस्ते हर्षमतुलमवापुस्त्रिदशा

प्रहार से मरा हुआ वह दैत्य पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ ५९-६१ ॥ राजन्, जब

महासुर रक्तबीज बिना रुधिर का हो गया तब देवता बड़े प्रसन्न हुए, और उसका

नृप ॥ ६२ ॥ तेषां मातृगणो जातो ननर्तासृङ्मदोद्धतः ॥ ॐ ॥ ६३ ॥

रुधिर पीकर देवियाँ उद्धत होकर नाचने लगीं ॥ ६२-६३ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये रक्तबीजवधो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

उवाच १, अर्धश्लोकः १, श्लोकाः ६१, एवम् ६३, एवमादितः ॥ ५०२ ॥

—:०:—

नवमोऽध्यायः

निशुम्भ का वध

ध्यानम्

ॐ बन्धूककाञ्चननिभं रुचिराक्षमालां पाशाङ्कुशौ च वरदां निजबाहुदण्डैः । बिभ्राणमिन्दुशकलाभरणं त्रिनेत्रमर्धाम्बिकेश-मनिशं वपुराश्रयामि ॥

मैं अर्धनारीश्वर के श्रीविग्रह की निरन्तर शरण ग्रहण करता हूँ । अम्बा का वर्ण बन्धूक पुष्प और सुवर्ण के समान रक्त-पीत मिश्रित है । वह अपनी भुजाओं में सुन्दर

अक्षमाला, पाश, अङ्कुश और वरद-मुद्रा धारण करता है; अर्धचन्द्र उसका आभूषण है तथा माता तीन नेत्रों से सुशोभित है।

'ॐ' राजोवाच ॥ १ ॥

विचित्रमिदमाख्यातं भगवन् भवता मम। देव्याश्चरित-माहात्म्यं रक्तबीजवधाश्रितम् ॥ २ ॥ भूयश्चेच्छाम्यहं श्रोतुं रक्तबीजे निपातिते। चकार शुम्भो यत्कर्म निशुम्भश्चातिकोपनः ॥ ३ ॥

राजा सुरथ ने कहा—भगवन्, आपने देवी का चरित्र, माहात्म्य और रक्तबीज के वध की विचित्र कथा का वर्णन किया। रक्तबीज के मरने पर महाक्रोधी शुम्भ और निशुम्भ ने क्या किया था, वह भी मैं सुनना चाहता हूँ ॥ १-३ ॥ मेधा ऋषि कहते

हैं—राजन्, जब रक्तबीज मारा गया और अन्य असुर भी युद्ध में मार डाले गये, तब शुम्भ और निशुम्भ को बड़ा क्रोध आया ॥ ४-५ ॥ अपनी सेना को मरी हुई देखकर निशुम्भ कुपित होकर, असुरों की मुख्य सेना लेकर दौड़ा ॥ ६ ॥ उसके आगे, पीछे

ऋषिरुवाच ॥ ४ ॥

चकार कोपमतुलं रक्तबीजे निपातिते । शुम्भासुरो निशुम्भश्च हतेष्वन्येषु चाहवे ॥ ५ ॥ हन्यमानं महासैन्यं विलोक्यामर्षमुद्वहन् । अभ्यधावन्निशुम्भोऽथ मुख्ययासुरसेनया ॥ ६ ॥ तस्याग्रतस्तथा पृष्ठे पार्श्वयोश्च महासुराः । संदष्टौष्ठपुटाः क्रुद्धा हन्तुं देवीमुपाययुः ॥ ७ ॥ आजगाम महावीर्यः शुम्भोऽपि स्वबलैर्वृतः ।

और दोनों ओर बड़े-बड़े असुर क्रोध से होठ चबाते हुए देवी को मारने दौड़े ॥ ७ ॥ महापराक्रमी शुम्भ भी कुपित होकर, अपनी सेना लेकर देवियों से युद्ध करके चण्डिका

को मारने के लिए आया ॥ ८ ॥ शुम्भ और निशुम्भ से देवी के साथ युद्ध होने लगा। जैसे बादल पानी बरसाते हैं वैसे ही शुम्भ और निशुम्भ बाण बरसाने लगे ॥ ९ ॥ चण्डिका ने अपने बाणों से शुम्भ-निशुम्भ के चलाये हुए बाणों को काट डाला, और

निहन्तुं चण्डिकां कोपात्कृत्वा युद्धं तु मातृभिः ॥ ८ ॥ ततो युद्धमतीवासीद्देव्या शुम्भनिशुम्भयोः । शरवर्षमतीवोग्रं मेघयोरिव वर्षतोः ॥ ९ ॥ चिच्छेदास्ताञ्छरांस्ताभ्यां चण्डिका स्वशरोत्करैः । ताडयामास चाङ्गेषु शस्त्रौघैरसुरेश्वरौ ॥ १० ॥ निशुम्भो निशितं खड्गं चर्म चादाय सुप्रभम् । अताडयन्मूर्ध्नि सिंहं देव्या वाहन-मुत्तमम् ॥ ११ ॥ ताडिते वाहने देवी क्षुरप्रेणासिमुत्तमम् । निशुम्भ-

उनके अङ्गों में बहुत-से बाण मारे ॥ १० ॥ निशुम्भ ने एक पैनी तलवार और एक चमकती हुई ढाल उठा लिया, और देवी के वाहन सिंह के सिर पर एक प्रहार किया ॥ ११ ॥

सिंह के सिर में तलवार लगते ही देवी ने क्षुरप्र नामक शस्त्र से निशुम्भ की तलवार और अष्टचन्द्रक ढाल को काट डाला ॥ १२ ॥ ढाल-तलवार कट जाने पर निशुम्भ ने एक शक्ति चलाई। देवी ने सामने आई हुई शक्ति को चक्र से काटकर दो खण्ड कर

स्याशु चिच्छेद चर्म चाप्यष्टचन्द्रकम् ॥ १२ ॥ छिन्ने चर्मणि खड्गे च शक्तिं चिक्षेप सोऽसुरः। तामप्यस्य द्विधा चक्रे चक्रेणाभिमुखागताम् ॥ १३ ॥ कोपाध्मातो निशुम्भोऽथ शूलं जग्राह दानवः। आयातं मुष्टिपातेन देवी तच्चाप्यचूर्णयत् ॥ १४ ॥ आविध्याथ गदां सोऽपि चिक्षेप चण्डिकां प्रति। सापि देव्या त्रिशूलेन भिन्ना

दिया ॥ १३ ॥ तब निशुम्भ ने एक शूल चलाया। देवी ने घूँसा मारकर उस शूल को चूर कर दिया ॥ १४ ॥ तब उसने देवी पर एक गदा चलाई। देवी ने उसे त्रिशूल से

काटकर भस्म कर दिया ॥ १५ ॥ उसके बाद निशुम्भ परशु लेकर दौड़ा। देवी ने उसे बाणों से मारकर पृथ्वी पर गिरा दिया ॥ १६ ॥ महापराक्रमी निशुम्भ के गिरने पर उसका भाई शुम्भ कुपित होकर देवी को मारने दौड़ा ॥ १७ ॥ वह रथ पर सवार

भस्मत्वमागता ॥ १५ ॥ ततः परशुहस्तं तमायान्तं दैत्यपुङ्गवम् । आहत्य देवी बाणौघैरपातयत भूतले ॥ १६ ॥ तस्मिन्निपतिते भूमौ निशुम्भे भीमविक्रमे । भ्रातर्यतीव संक्रुद्धः प्रययौ हन्तुमम्बिकाम् ॥ १७ ॥ स रथस्थस्तथात्युच्चैर्गृहीतपरमायुधैः । भुजैरष्टाभिरतुलैर्व्याप्याशेषं बभौ नभः ॥ १८ ॥ तमायान्तं समालोक्य देवी

होकर, हाथों में बड़े-बड़े अस्त्र-शस्त्र लेकर, लम्बी भुजाएँ आकाश में फैलाकर युद्ध-भूमि में आया ॥ १८ ॥ उसे देखकर देवी ने शंख बजाया और धनुष की ज्या का टंकार

किया ॥ १९ ॥ दैत्यों की सेना का तेज नष्ट करनेवाले घंटा के शब्द से सब दिशाओं को भर दिया ॥ २० ॥ सिंह ने भी बड़े-बड़े हाथियों का मद दूर करनेवाले महानाद से पृथ्वी, आकाश और सब दिशाओं को भर दिया ॥ २१ ॥ काली ने ऊपर को उछलकर

शङ्खमवादयत् । ज्याशब्दं चापि धनुषश्चकारातीव दुःसहम् ॥ १९ ॥ पूरयामास ककुभो निजघण्टास्वनेन च । समस्तदैत्यसैन्यानां तेजोवधविधायिना ॥ २० ॥ ततः सिंहो महानादैस्त्याजितेभमहामदैः । पूरयामास गगनं गां तथैव दिशो दश ॥ २१ ॥ ततः काली समुत्पत्य गगनं क्ष्मामताडयत् । कराभ्यां तन्निनादेन प्राक्स्वनास्ते तिरोहिताः ॥ २२ ॥ अट्टाट्टहासमशिवं शिवदूती चकारह । तैः

दोनों हाथ पृथ्वी पर पटक दिया। उसके शब्द में पहले के सब शब्द विलीन हो गये ॥ २२ ॥ उसके बाद शिवदूती भयानक शब्द से गरजीं। वह शब्द सुनकर असुरों

की सेना डर गई। तब शुम्भ को बड़ा क्रोध आया ॥ २३ ॥ अम्बिका ने शुम्भ से कहा— रे दुष्ट, खड़ा रह, यह सुनकर आकाश में स्थित देवता 'जय-जय' करने लगे ॥ २४ ॥ तब शुम्भ ने चमकती हुई भयानक शक्ति चलाई। उसे आग के पर्वत के समान आती

शब्दैरसुरास्त्रेसुः शुम्भः कोपं परं ययौ ॥ २३ ॥ दुरात्मंस्तिष्ठ तिष्ठेति व्याजहाराम्बिका यदा। तदा जयेत्यभिहितं देवैराकाशसंस्थितैः ॥ २४ ॥ शुम्भेनागत्य या शक्तिर्मुक्ता ज्वालातिभीषणा। आयान्ती वह्निकूटाभा सा निरस्ता महोल्कया ॥ २५ ॥ सिंहनादेन शुम्भस्य व्याप्तं लोकत्रयान्तरम्। निर्घातनिःस्वनो घोरो जितवान-

हुई देखकर देवी ने महोल्का नाम की शक्ति से काट डाला ॥ २५ ॥ शुम्भ सिंह के समान गरजा। उसके गरजने का शब्द तीनों लोकों में फैल गया। हे राजन्, उसी

समय सेना में 'मारो-मारो' का शब्द हुआ। उस शब्द में शुम्भ के गरजने का शब्द विलीन हो गया ॥ २६ ॥ शुम्भ के चलाये हुए सैकड़ों-हजारों बाणों को देवी ने, और देवी के चलाये हुए बाणों को शुम्भ ने अपने बाणों से काट डाला ॥ २७ ॥ देवी ने

वनीपते ॥ २६ ॥ शुम्भमुक्ताञ्छरान्देवी शुम्भस्तत्प्रहिताञ्छरान् । चिच्छेद स्वशरैरुग्रैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २७ ॥ ततः सा चण्डिका क्रुद्धा शूलेनाभिजघान तम् । स तदाभिहतो भूमौ मूर्च्छितो निपपात ह ॥ २८ ॥ ततो निःशुम्भः सम्प्राप्य चेतनामात्तकार्मुकः । आजघान शरैर्देवीं कालीं केसरिणं तथा ॥ २९ ॥ पुनश्च कृत्वा

कुपित होकर शुम्भ को त्रिशूल से मारा; जिससे वह घायल और मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ २८ ॥ उसी समय निशुम्भ को चेत आया और वह धनुष लेकर बाणों से काली देवी और सिंह को मारने लगा ॥ २९ ॥ उसके बाद असुरराज शुम्भ ने दस

हजार बाहु धारण करके हाथों में चक्र लेकर देवी को घेर लिया ॥ ३० ॥ संकटनाशिनी भगवती दुर्गा ने क्रुद्ध होकर अपने बाण से उन चक्रों और बाणों को काट डाला ॥ ३१ ॥ तब निशुम्भ गदा लेकर दैत्यों की सेना के साथ बड़े वेग से देवी को मारने दौड़ा ॥ ३२ ॥

बाहूनामयुतं दनुजेश्वरः । चक्रायुधेन दितिजश्छादयामास चण्डिकाम् ॥ ३० ॥ ततो भगवती क्रुद्धा दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी । चिच्छेद तानि चक्राणि स्वशरैः सायकांश्च तान् ॥ ३१ ॥ ततो निशुम्भो वेगेन गदामादाय चण्डिकाम् । अभ्यधावत वै हन्तुं दैत्य-सेनासमावृतः ॥ ३२ ॥ तस्यापतत एवाशु गदां चिच्छेद चण्डिका । खड्गेन शितधारेण स च शूलं समाददे ॥ ३३ ॥ शूलहस्तं

देवी ने अपनी तेज तलवार से उसकी गदा काट डाली । तब उसने त्रिशूल उठाया ॥ ३३ ॥ त्रिशूल लेकर आते हुए निशुम्भ को देखकर देवी ने बड़े वेग से उसकी

छाती में एक शूल मारा ॥ ३४ ॥ शूल लगने से उसकी छाती फट गई, और उसमें से एक दूसरा महापराक्रमी पुरुष देवी से "खड़ी रह" कहता हुआ निकला ॥ ३५ ॥ देवी ने

समायान्तं निशुम्भममरार्दनम् । हृदि विव्याध शूलेन वेगाविद्धेन चण्डिका ॥ ३४ ॥ भिन्नस्य तस्य शूलेन हृदयान्निःसृतोऽपरः । महाबलो महावीर्यस्तिष्ठेति पुरुषो वदन् ॥ ३५ ॥ तस्य निष्क्रामतो देवी प्रहस्य स्वनवत्ततः । शिरश्चिच्छेद खड्गेन ततोऽसावपतद्भुवि ॥ ३६ ॥ ततः सिंहश्चखादोग्रं दंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान् ।

हँसकर तलवार से उसका सिर काट डाला । और वह पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ ३६ ॥ देवी का वाहन सिंह अपनी पैनी दाढ़ों से असुरों के सिर और होठ चबाने लगा । काली

और शिवदूती भी असुरों को खाने लगीं ॥ ३७ ॥ कितने ही असुर कौमारी की शक्ति से मारे गये और कितने ही ब्रह्माणी के अभिमन्त्रित जल से नष्ट हो गये ॥ ३८ ॥ कितने

असुरांस्तांस्तथा काली शिवदूती तथापरान् ॥ ३७ ॥ कौमारी-
शक्तिनिर्भिन्नाः केचिन्नेशुर्महासुराः । ब्रह्माणीमन्त्रपूतेन तोयेनान्ये
निराकृताः ॥ ३८ ॥ माहेश्वरीत्रिशूलेन भिन्नाः पेतुस्तथापरे ।
वाराहीतुण्डघातेन केचिच्चूर्णीकृता भुवि ॥ ३९ ॥ खण्डं खण्डं
च चक्रेण वैष्णव्या दानवाः कृताः । वज्रेण चैन्द्रीहस्ताग्रविमुक्तेन

ही माहेश्वरी के त्रिशूल से कटकर गिर पड़े और कितने ही वाराही के तुंड-प्रहार से चूर्ण हो गये ॥ ३९ ॥ वैष्णवी ने चक्र से असुरों को खंड-खंड कर डाला और ऐन्द्री ने

बहुत से असुरों को वज्र से मार डाला ॥ ४० ॥ कितने ही असुर अस्त्र-शस्त्र से मारे गये,

तथापरे ॥ ४० ॥ केचिद्विनेशुरसुराः केचिन्नष्टा महाहवात् । भक्षिताश्चापरे कालीशिवदूतीमृगाधिपैः ॥ ॐ ॥ ४१ ॥

कितने ही घोर संग्राम में डरकर मर गये और बहुतों को काली, शिवदूती और सिंह ने खा लिया ॥ ४१ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये निशुम्भवधो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

उवाच २, श्लोकाः ३९, एवम् ४१, एवमादितः ५४३ ॥

—:०:—

दशमोऽध्यायः

शुम्भ का वध

ध्यानम्

'ॐ उत्तप्तहेमरुचिरां रविचन्द्रवह्निनेत्रां धनुश्शरयुताङ्कुश-पाशशूलम्। रम्यैर्भुजैश्च दधतीं शिवशक्तिरूपां कामेश्वरीं हृदि भजामि धृतेन्दुलेखाम् ॥

मैं मस्तक पर अर्द्धचन्द्र धारण करने वाली शिवशक्ति स्वरूपा भगवती कामेश्वरी का हृदय में चिन्तन करता हूँ। शिव शक्ति स्वरूपा भगवती तपाये हुए सुवर्ण के समान सुन्दर हैं। सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि—ये ही तीन उनके नेत्र हैं तथा वे अपने मनोहर हाथों में धनुष-बाण, अंकुश, पाश और शूल धारण किये हुए हैं।

मेधा ऋषि कहते हैं—हे राजन्, प्राणों के समान प्रिय अपने भाई निशुम्भ को सेना सहित मरा हुआ देखकर शुम्भ कुपित होकर बोला—हे दुर्गे, तुम अपने बल का गर्व न

ॐ ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

निशुम्भं निहतं दृष्ट्वा भ्रातरं प्राणसम्मितम् । हन्यमानं बलं चैव शुम्भः क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ॥ २ ॥ बलावलेपाद्दुष्टे त्वं मा दुर्गे गर्वमावह । अन्यासां बलमाश्रित्य युद्ध्यसे यातिमानिनी ॥ ३ ॥

करो; तुम दूसरों के बल पर युद्ध करती हो और अपने पराक्रम का अभिमान करती हो ॥१-३॥ देवी ने उत्तर दिया—मैं इस संसार में एक ही हूँ, दूसरा और कौन है; रे दुष्ट,

देख, मेरी यह शक्तियाँ मुझमें ही लीन होती हैं ॥ ४-५ ॥ देवी के यह कहते ही ब्रह्माणी आदि सब शक्तियाँ देवी के शरीर में लीन हो गईं । केवल एक अम्बिका रह गईं ॥ ६ ॥

देव्युवाच ॥ ४ ॥

एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा । पश्यैता दुष्ट मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतयः ॥ ५ ॥ ततः समस्तास्ता देव्यो ब्रह्माणी-प्रमुखालयम् । तस्या देव्यास्तनौ जग्मुरेकैवासीत्तदाम्बिका ॥ ६ ॥

देव्युवाच ॥ ७ ॥

अहं विभूत्या बहुभिरिह रूपैर्यदास्थिता । तत्संहृतं मयैकैव तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव ॥ ८ ॥

देवी ने कहा—मैं अपनी शक्तियों से अनेक रूपों से खड़ी थी; अब उन रूपों को समेटकर अकेली खड़ी हूँ, तू स्थिर होकर युद्ध कर ॥ ७-८ ॥ ऋषि कहते हैं—उसके बाद देवताओं

और असुरों के देखते-देखते देवी और शुम्भ से युद्ध होने लगा ॥ ९-१० ॥ तीक्ष्ण बाणों और भयानक अस्त्र-शस्त्रों से सब लोकों को भयभीत करनेवाला महायुद्ध हुआ ॥ ११ ॥

ऋषिरुवाच ॥ ९ ॥

ततः प्रववृते युद्धं देव्याः शुम्भस्य चोभयोः । पश्यतां सर्वदेवानामसुराणां च दारुणम् ॥ १० ॥ शरवर्षैः शितैः शस्त्रैस्तथास्त्रैश्चैव दारुणैः । तयोर्युद्धमभूद्भूयः सर्वलोकभयङ्करम् ॥ ११ ॥ दिव्यान्यस्त्राणि शतशो मुमुचे यान्यथाम्बिका । बभञ्ज तानि दैत्येन्द्रस्तत्प्रतीघातकर्तृभिः ॥ १२ ॥ मुक्तानि तेन चास्त्राणि दिव्यानि

अम्बिका ने जो सैकड़ों दिव्य अस्त्र चलाये उन्हें दैत्यराज शुम्भ ने अपने अस्त्रों से काट डाला ॥ १२ ॥ शुम्भ ने जिन अस्त्रों का प्रहार किया, उनको देवी ने हुंकार करके अनायास

तोड़ डाला ॥ १३ ॥ शुम्भ ने कुपित होकर सैकड़ों बाणों से देवी को ढक दिया। देवी ने क्रुद्ध होकर अपने बाणों से उसका धनुष काट डाला ॥ १४ ॥ जब धनुष कटकर गिर

परमेश्वरी। बभञ्ज लीलयैवोग्रहुङ्कारोच्चारणादिभिः ॥ १३ ॥ ततः शरशतैर्देवीमाच्छादयत सोऽसुरः। सापि तत्कुपिता देवी धनुश्चिच्छेद चेषुभिः ॥ १४ ॥ छिन्ने धनुषि दैत्येन्द्रस्तथा शक्तिमथाददे। चिच्छेद देवी चक्रेण तामप्यस्य करे स्थिताम् ॥ १५ ॥ ततः खड्गमुपादाय शतचन्द्रं च भानुमत्। अभ्यधावत्तदा देवीं दैत्यानामधिपेश्वरः ॥ १६ ॥ तस्यापतत एवाशु खड्गं चिच्छेद चण्डिका।

पड़ा तब उसने एक शक्ति उठाई। देवी ने उसे भी चक्र से काट डाला ॥ १५ ॥ तब दैत्यराज शुम्भ चमकती हुई ढाल-तलवार लेकर देवी की ओर दौड़ा ॥ १६ ॥ देवी ने

अपने तीक्ष्ण बाणों से सूर्य की किरणों के समान चमकती हुई उसकी ढाल-तलवार को भी काट डाला ।। १७ ।। उसके सारथि और घोड़ों को भी मार डाला, और उसका धनुष भी काट डाला । तब वह मुद्गर लेकर देवी को मारने दौड़ा ।। १८ ।। देवी ने उसके मुद्गर

धनुर्मुक्तैः शितैर्बाणैश्चर्म चार्ककरामलम् ॥ १७ ॥ हताश्वः स तदा दैत्यश्छिन्नधन्वा विसारथिः । जग्राह मुद्गरं घोरमम्बिकानिधनोद्यतः ॥ १८ ॥ चिच्छेदापततस्तस्य मुद्गरं निशितैः शरैः । तथापि सोऽभ्यधावत्तां मुष्टिमुद्यम्य वेगवान् ॥ १९ ॥ स मुष्टिं पातयामास हृदये दैत्यपुङ्गवः । देव्यास्तं चापि सा देवी तलेनोरस्य-

को भी तीक्ष्ण बाणों से काटकर गिरा दिया । तब वह घूँसा तानकर बड़े वेग से दौड़ा ।। १९ ।। उसने देवी की छाती में घूँसा मारा और देवी ने उसकी छाती में एक

थप्पड़ लगाया ॥ २० ॥ थप्पड़ लगते ही दैत्यराज शुम्भ पृथ्वी पर गिर पड़ा और शीघ्र ही फिर उठ खड़ा हुआ ॥ २१ ॥ फिर वह देवी को पकड़कर आकाश को उछल गया। वहाँ भी देवी ने निराधार ठहरकर शुम्भ के साथ युद्ध किया ॥ २२ ॥ आकाश में देवी और

ताडयत् ॥ २० ॥ तलप्रहाराभिहतो निपपात महीतले । स दैत्यराजः सहसा पुनरेव तथोत्थितः ॥ २१ ॥ उत्पत्य च प्रगृह्योच्चैर्देवीं गगनमास्थितः । तत्रापि सा निराधारा युयुधे तेन चण्डिका ॥ २२ ॥ नियुद्धं खे तदा दैत्यश्चण्डिका च परस्परम् । चक्रतुः प्रथमं सिद्धमुनिविस्मयकारकम् ॥ २३ ॥ ततो नियुद्धं सुचिरं कृत्वा तेनाम्बिका सह । उत्पात्य भ्रामयामास चिक्षेप धरणी-

शुम्भ का बाहुयुद्ध देखकर सिद्ध और मुनियों को बड़ा आश्चर्य हुआ; क्योंकि उससे पहले कभी आकाश में युद्ध नहीं हुआ था ॥ २३ ॥ चण्डिका ने बड़ी देर तक आकाश में

उसके साथ युद्ध करके उसे ऊपर को उछालकर घुमाया और पृथ्वी पर फेंक दिया ॥ २४ ॥ वह दुष्ट पृथ्वी पर गिरकर फिर उठ खड़ा हुआ और घूँसा तानकर बड़े वेग से देवी को मारने दौड़ा ॥ २५ ॥ देवी ने दैत्यराज शुम्भ को आते हुए देखकर, उसकी छाती में

तले ॥ २४ ॥ स क्षिप्तो धरणीं प्राप्य मुष्टिमुद्यम्य वेगितः । अभ्य-धावत दुष्टात्मा चण्डिकानिधनेच्छया ॥ २५ ॥ तमायान्तं ततो देवी सर्वदैत्यजनेश्वरम् । जगत्यां पातयामास भित्त्वा शूलेन वक्षसि ॥ २६ ॥ स गतासुः पपातोर्व्यां देवीशूलाग्रविक्षतः । चालयन् सकलां पृथ्वीं साब्धिद्वीपां सपर्वताम् ॥ २७ ॥ ततः

शूल मारकर पृथ्वी पर गिरा दिया ॥ २६ ॥ देवी के शूल से घायल होकर शुम्भ मर गया और सम्पूर्ण पृथ्वी, समुद्र, पर्वत तथा द्वीपों को कँपाता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ २७ ॥ उस दुष्ट के मरने पर संसार सुखी हो गया; सब प्राणी प्रसन्न हो गये

और आकाश निर्मल हो गया ॥ २८ ॥ पहले जो उत्पात होते थे, वे सब उसके मरने पर शान्त हो गये । उल्कापात मिट गया, नदियाँ अपने मार्ग से बहने लगीं ॥ २९ ॥ देवता

प्रसन्नमखिलं हते तस्मिन् दुरात्मनि । जगत्स्वास्थ्यमतीवाप निर्मलं चाभवन्नभः ॥ २८ ॥ उत्पातमेघाः सोल्का ये प्रागासंस्ते शमं ययुः । सरितो मार्गवाहिन्यस्तथासंस्तत्र पातिते ॥ २९ ॥ ततो देवगणाः सर्वे हर्षनिर्भरमानसाः । बभूवुर्निहते तस्मिन् गन्धर्वा ललितं जगुः ॥ ३० ॥ अवादयंस्तथैवान्ये ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।

प्रसन्न हो गये और गन्धर्व मधुर स्वर से गाने लगे ॥ ३० ॥ बाजे बजने लगे, अप्सराएँ नाचने लगीं, शीतल वायु चलने लगी और सूर्य की किरणें निर्मल हो

गईं ॥ ३१ ॥ उसके मरने पर यज्ञ की अग्नि फिर से जलने लगी । दिशाओं में जो

ववुः पुण्यास्तथा वाताः सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः ॥ ३१ ॥ जज्वलुश्चाग्नयः शान्ताःशान्तादिग्जनितस्वनाः ॥ ॐ ॥ ३२ ॥

हाहाकार मचा हुआ था, वह सब शान्त हो गया ॥ ३२ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये शुम्भवधो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

उवाच ४, अर्धश्लोकः १, श्लोकाः २७, एवम् ३२, एवमादितः ५७५ ॥

एकादशोऽध्यायः

देवताओं के द्वारा देवी की स्तुति तथा देवी द्वारा देवताओं को वरदान

ध्यानम्

'ॐ' बालरविद्युतिमिन्दुकिरीटां तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम् ।
स्मेरमुखीं वरदाङ्कुशपाशाभीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम् ॥

मैं भुवनेश्वरी देवी का ध्यान करता हूँ । उनके श्रीअङ्गों की आभा उषाकालीन सूर्य के समान है । माथे पर चन्द्रमा का मुकुट है । वे उभरे हुए स्तनों और तीनों नेत्रों से युक्त हैं । मातृश्री के मुख पर मुसकान की छटा छायी रहती है और हाथों में वरद, अंकुश, पाश एवं अभय-मुद्रा शोभा पाते हैं ।

मेधा ऋषि कहते हैं—देवी ने जब शुम्भ को मार डाला तब इन्द्र और अग्नि सहित सब देवता अभीष्ट लाभ होने से प्रसन्न होकर कात्यायनी देवी की स्तुति करने लगे ॥१-२॥ हे देवि, हे शरणागत का दुःख नष्ट करनेवाली, प्रसन्न हो। हे सम्पूर्ण जगत् की माता,

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

देव्या हते तत्र महासुरेन्द्रे सेन्द्राः सुरा वह्निपुरोगमास्ताम्। कात्यायनीं तुष्टुवुरिष्टलाभाद् विकाशिवक्त्राब्जविकाशिताशाः ॥ २ ॥ देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य। प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ॥ ३ ॥ आधारभूता जगतस्त्वमेका महीस्वरूपेण यतः

प्रसन्न हो; हे विश्वेश्वरी, प्रसन्न होकर विश्व की रक्षा करो। हे देवि, तुम्हीं चर और अचर की ईश्वरी हो ॥३॥ तुम सम्पूर्ण जगत् की आधार हो और तुम्हीं पृथ्वी-रूप होकर

स्थित हो। हे अतुल पराक्रमवाली, तुम्हीं जल-रूप से स्थित हो और सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त हो ॥ ४ ॥ तुम्हीं अतुल पराक्रमवाली वैष्णवी शक्ति होकर जगत् का पालन करती हो और महामाया तुम्हीं हो। तुमने सम्पूर्ण संसार मोहित कर रक्खा है। हे देवि,

स्थितासि। अपां स्वरूपस्थितया त्वयैतदाप्यायते कृत्स्नमलङ्घ्य-वीर्ये ॥ ४ ॥ त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या विश्वस्य बीजं परमासि माया। सम्मोहितं देवि समस्तमेतत् त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः ॥ ५ ॥ विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु। त्वयैकया पूरितमम्बयैतत् का ते स्तुतिः स्तव्यपरा

तुम्हारी प्रसन्नता संसार में मुक्ति का कारण है ॥ ५ ॥ हे देवि, संसार में जितनी विद्याएँ हैं, वे सब तुम्हीं हो; और जितनी स्त्रियाँ हैं, वे सब तुम्हारी ही अंश हैं। तुम अकेली

ही सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त हो। हे देवि, इसके सिवा हम लोग और क्या आपकी स्तुति करें॥ ६॥ तुम सब प्राणियों में स्थित हो। जो कोई तुम्हारी स्तुति करता है, उसे स्वर्ग और मुक्ति देती हो। हम लोग किन शब्दों में तुम्हारी स्तुति करें॥ ७॥ तुम सब प्राणियों

परोक्तिः॥ ६॥ सर्वभूता यदा देवी स्वर्गमुक्तिप्रदायिनी। त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तयः॥ ७॥ सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते। स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥ ८॥ कलाकाष्ठादिरूपेण परिणामप्रदायिनि। विश्वस्योपरतौ शक्ते

के हृदय में बुद्धिरूप से स्थित हो, तुम स्वर्ग और मुक्ति देनेवाली हो। हे देवि, हे नारायणि, हम लोग तुमको प्रणाम करते हैं॥ ८॥ तुम कला-काष्ठा आदि काल के परिणाम से सब प्राणियों का अन्त करती हो। सम्पूर्ण जगत् का संहार करने की शक्ति

तुम्हीं हो । हे नारायणि; हम लोग तुमको प्रणाम करते हैं ।। ९ ।। तुम सब मंगलों का स्वरूप हो, सब अर्थों को सिद्ध करनेवाली और कल्याण-रूपिणी हो । शरण देनेवाली त्रिनयनी गौरी तुम्हीं हो । हे नारायणि, हम लोग तुमको प्रणाम करते हैं ।। १० ।। संसार

नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ९ ॥ सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके । शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १० ॥ सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि । गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ११ ॥ शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे । सर्वस्यार्त्तिहरे देवि

की सृष्टि, स्थिति और विनाश की शक्ति तुम्हीं हो । तुम नित्या हो, और सब गुणों की आधार हो । हे गुणमये, हे नारायणि, हम लोग तुमको प्रणाम करते हैं ।। ११ ।। तुम शरण में आये हुए दीनजनों की दुःख से रक्षा करती हो, सबका दुःख दूर करती हो ।

हे देवि, हे नारायणि, हम लोग तुमको प्रणाम करते हैं ।। १२ ।। तुम ब्रह्माणी का रूप धारण करके, हंसयुक्त विमान पर बैठकर, कुश से जल छिड़कती हो। हे देवि, हे नारायणि, हम लोग तुमको प्रणाम करते हैं ।। १३ ।। तुम माहेश्वरी-रूप धारण करके

नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १२ ॥ हंसयुक्तविमानस्थे ब्रह्माणीरूपधारिणि । कौशाम्भःक्षरिके देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १३ ॥ त्रिशूल-चन्द्राहिधरे महावृषभवाहिनि । माहेश्वरीस्वरूपेण नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १४ ॥ मयूरकुक्कुटवृते महाशक्तिधरेऽनघे । कौमारीरूप-

त्रिशूल, चन्द्र और सर्प धारण करती हो तथा बैल पर सवार होती हो। हे नारायणि, हम लोग तुमको प्रणाम करते हैं ।। १४ ।। तुम कौमारी-रूप धारण करके, मोर व मुर्गे पर सवार होकर महाशक्ति धारण करती हो। हे पापरहिते, हे नारायणि, हम लोग तुमको

प्रणाम करते हैं ।। १५ ।। तुम वैष्णवी-रूप होकर, शंख, चक्र, गदा और धनुष धारण करती हो । हे नारायणि, प्रसन्न हो । हम लोग तुमको प्रणाम करते हैं ।। १६ ।। तुम वाराहरूप धारण करके, हाथ में महाचक्र लेकर, दाँतों से पृथ्वी का उद्धार करती

संस्थाने नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १५ ॥ शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गगृहीत-परमायुधे । प्रसीद वैष्णवीरूपे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १६ ॥ गृहीतोग्रमहाचक्रे दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरे । वराहरूपिणि शिवे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १७ ॥ नृसिंहरूपेणोग्रेण हन्तुं दैत्यान् कृतोद्यमे । त्रैलोक्यत्राणसहिते नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १८ ॥ किरीटिनि

हो । हे कल्याणि, हे नारायणि, हम लोग तुमको प्रणाम करते हैं ।। १७ ।। तुम भयानक नृसिंहरूप धारण करके तीनों लोकों की रक्षा के लिए दैत्यों का वध करती हो । हे नारायणि, हम लोग तुमको प्रणाम करते हैं ।। १८ ।। तुम इन्द्र की शक्ति हो; किरीट

'धारण करके हजार नेत्रों से शोभित होकर, महावज्र लेकर, वृत्रासुर का विनाश करने-वाली हो। हे नारायणि, हम लोग तुमको प्रणाम करते हैं॥ १९॥ तुम शिवदूती का रूप धारण करके दैत्यों का बल नष्ट करती हो। भयानक रूप धारण करके महाशब्द

महावज्रे सहस्रनयनोज्ज्वले। वृत्रप्राणहरे चैन्द्रि नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १९॥ शिवदूतीस्वरूपेण हतदैत्यमहाबले। घोररूपे महारावे नारायणि नमोऽस्तु ते॥ २०॥ दंष्ट्राकरालवदने शिरोमालाविभूषणे। चामुण्डे मुण्डमथने नारायणि नमोऽस्तु ते॥ २१॥ लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये श्रद्धे पुष्टिस्वधे ध्रुवे। महारात्रि महाविद्ये

करती हो। हे नारायणि, हम लोग तुमको प्रणाम करते हैं॥ २०॥ तुम बड़े-बड़े दाँत निकाले, भयावनी सूरत, मुण्डमाल पहने, चण्डमुण्ड का विनाश करनेवाली चामुण्डा-रूप हो। हे नारायणि, हम लोग तुमको प्रणाम करते हैं॥ २१॥ तुम लक्ष्मी, लज्जा,

महाविद्या, श्रद्धा, पुष्टि और स्वधारूपिणी हो । महारात्रि और महाविद्या तुम्हीं हो ।
हे नारायणि, हम लोग तुमको प्रणाम करते हैं ।। २२ ।। तुम मेधा, सरस्वती, ऐश्वर्य,
सत्त्व, रज और तमोगुणरूपिणी हो । हे ईश्वरि, हे नारायणि, प्रसन्न हो । हम लोग

नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ २२ ॥ मेधे सरस्वति वरे भूति बाभ्रवि
तामसि । नियते त्वं प्रसीदेशे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ २३ ॥
सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते । भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे
देवि नमोऽस्तु ते ॥ २४ ॥ एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम् ।

तुमको प्रणाम करते हैं ।। २३ ।। हे सर्वस्वरूपे हे सर्वेश्वरि, हे सर्वशक्तिसमन्विते, हे
दुर्गे, भय से हम लोगों की रक्षा करो । हे देवि, हम लोग तुमको प्रणाम करते हैं ।। २४ ।।
तीन नेत्रों से शोभित यह तुम्हारा सौम्य मुख सब प्रकार के भय से हमारी रक्षा करे ।

हे कात्यायनि, हम लोग तुमको प्रणाम करते हैं ।। २५ ।। हे भद्रकालि, तुमको प्रणाम है। उग्र असुरों का नाश करनेवाला तुम्हारा भयानक त्रिशूल भय से हम लोगों की रक्षा करे ।। २६ ।। हे देवि, जिसका शब्द संसार भर में फैलकर दैत्यों का तेज नष्ट

पातु नः सर्वभीतिभ्यः कात्यायनि नमोऽस्तु ते ॥ २५ ॥ ज्वाला-करालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम् । त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तु ते ॥ २६ ॥ हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत् । सा घण्टा पातु नो देवि पापेभ्योऽनः सुतानिव ॥ २७ ॥ असुरा-सृग्वसापङ्कचर्चितस्ते करोज्ज्वलः । शुभाय खड्गो भवतु चण्डिके

करता है, वह तुम्हारा घंटा, पुत्रों के समान हम लोगों की सब पापों से रक्षा करे ।। २७ ।। हे चण्डिके, असुरों के रुधिर और चर्बी से लथपथ, यह चमकता हुआ तुम्हारा खड्ग

हम लोगों का कल्याण करे। हम लोग तुमको प्रणाम करते हैं ॥ २८ ॥ जब तुम प्रसन्न होती हो तब सब रोगों का नाश कर देती हो और जब रुष्ट होती हो तब सब अभीष्ट कामों को नष्ट कर देती हो। तुम्हारे आश्रित मनुष्यों को दुःख नहीं होता और जो

त्वां नता वयम् ॥ २८ ॥ रोगानशेषानपहंसि तुष्टा रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् । त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ॥ २९ ॥ एतत्कृतं यत्कदनं त्वयाद्य धर्मद्विषां देवि महासुराणाम् । रूपैरनेकैर्बहुधाऽऽत्ममूर्तिं कृत्वाम्बिके तत्प्रकरोति कान्या ॥ ३० ॥ विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपेष्वाद्येषु

तुम्हारा आश्रय लेते हैं, वे दूसरों को भी आश्रय देने योग्य हो जाते हैं ॥ २९ ॥ हे देवि, तुमने अनेक रूप धारण करके धर्मद्रोही असुरों का विनाश किया। यह काम तुम्हारे सिवा और कौन कर सकता है ? ॥ ३० ॥ चौदह विद्याओं, चार वेदों, छः शास्त्रों

और ज्ञानरूप दीपक के होने पर भी इस संसार को ममतारूपी घोर अन्धकार-गर्त में तुम्हारे सिवा और कौन घुमा सकता है ।। ३१ ।। जहाँ राक्षस, विषैले साँप, शत्रु और चोर होते हैं, वहाँ तथा समुद्र और दावानल में तुम स्थित होकर संसार की रक्षा

वाक्येषु च का त्वदन्या । ममत्वगर्तेऽतिमहान्धकारे विभ्रामयत्येतदतीव विश्वम् ॥ ३१ ॥ रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा यत्रारयो दस्युबलानि यत्र । दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम् ॥ ३२ ॥ विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् । विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति

करती हो ।। ३२ ।। तुम विश्वेश्वरी हो; क्योंकि विश्व की पालन-करता हो । तुम विश्वात्मिका हो; क्योंकि विश्व को धारण करती हो । ब्रह्मा, विष्णु और महेश, जो विश्व के स्वामी हैं, वे भी तुम्हारी वन्दना करते हैं । जो लोग तुम्हारे विनीत भक्त हैं,

वे संसार को आश्रय दे सकते हैं ॥ ३३ ॥ हे देवि, जिस प्रकार तुमने इस समय असुरों को मारकर हम लोगों की रक्षा की है, उसी प्रकार सर्वदा शत्रुओं के भय से हमारी रक्षा करती रहो, और सम्पूर्ण जगत् के पापों को नष्ट करके उत्पात करनेवाले विघ्नों

विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः ॥ ३३ ॥ देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीतेर्नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः । पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाशु उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान् ॥ ३४ ॥ प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि । त्रैलोक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव ॥ ३५ ॥

को भी दूर करो ॥ ३४ ॥ हे देवि, हे संसार का दुःख हरनेवाली, तीनों लोकों के निवासी तुम्हारी पूजा करते हैं । हम लोग बार-बार तुमको प्रणाम करते हैं, तुम प्रसन्न होकर हमको वरदान दो ॥ ३५ ॥ देवताओं की यह स्तुति सुनकर देवी ने कहा—हे

देवताओ, तुम जो वर माँगना चाहो, वह माँगो। मैं तुमको दूँगी। उससे तुम लोगों का और सम्पूर्ण जगत् का उपकार होगा॥ ३६-३७॥ देवताओं ने कहा—हे विश्वेश्वरि,

देव्युवाच॥ ३६॥

वरदाहं सुरगणा वरं यन्मनसेच्छथ। तं वृणुध्वं प्रयच्छामि जगतामुपकारकम्॥ ३७॥

देवा ऊचुः॥ ३८॥

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि। एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम्॥ ३९॥

जैसे इस समय तुमने हमारे शत्रुओं को मारकर तीनों लोकों की सब बाधाएँ शान्त की हैं, वैसे ही सदा हमारे शत्रुओं का विनाश करती रहो॥ ३८-३९॥

देवी ने कहा—वैवस्वत मन्वन्तर में जब अट्ठाइसवाँ युग आवेगा, तब महाअसुर शुम्भ और निशुम्भ फिर जन्म लेंगे ॥ ४०-४१ ॥ तब मैं नन्द-गोप के घर में यशोदा के गर्भ से

देव्युवाच ॥ ४० ॥

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे । शुम्भो निशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येते महासुरौ ॥ ४१ ॥ नन्दगोपगृहे जाता यशोदागर्भसम्भवा । ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचलनिवासिनी ॥ ४२ ॥ पुनरप्यतिरौद्रेण रूपेण पृथिवीतले । अवतीर्य हनिष्यामि वैप्रचि-

जन्म लूँगी और उन दोनों का विनाश करके विन्ध्याचल पर निवास करूँगी ॥ ४२ ॥ उसके बाद फिर अत्यन्त भयानक रूप से पृथ्वी में अवतार लेकर वैप्रचित्त असुरों को

मारूँगी ॥ ४३ ॥ उन वैप्रचित्तों का भक्षण करते-करते मेरे दाँत अनार के फूल के समान लाल हो जायँगे ॥ ४४ ॥ स्वर्ग में देवता और मृत्युलोक में मनुष्य मेरी स्तुति करेंगे और मुझे रक्तदन्तिका कहेंगे ॥ ४५ ॥ उसके बाद एक ऐसा समय आवेगा, जब सौ वर्ष

त्तांस्तु दानवान् ॥ ४३ ॥ भक्षयन्त्याश्च तानुग्रान् वैप्रचित्तान्महासुरान् । रक्ता दन्ता भविष्यन्ति दाडिमीकुसुमोपमाः ॥ ४४ ॥ ततो मां देवताः स्वर्गे मर्त्यलोके च मानवाः । स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति सततं रक्तदन्तिकाम् ॥ ४५ ॥ भूयश्च शतवार्षिक्यामनावृष्ट्यामनम्भसि । मुनिभिः संस्तुता भूमौ सम्भविष्याम्ययोनिजा ॥ ४६ ॥ ततः शतेन नेत्राणां निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन् । कीर्तयिष्यन्ति

तक वर्षा नहीं होगी और मुनि लोग जल के लिए मेरी स्तुति करेंगे, तब मेरा अयोनिज अवतार होगा ॥ ४६ ॥ फिर मैं सौ नेत्रों से मुनियों को देखूँगी, तब लोग मुझे शताक्षी

कहेंगे ॥ ४७ ॥ हे देवताओ, जब तक वर्षा नहीं होगी, तब तक मैं अपनी देह से शाक उत्पन्न करके संसार का भरण-पोषण करूँगी ॥ ४८ ॥ तब मैं शाकम्भरी नाम से संसार में विख्यात हूँगी। उसी समय दुर्ग नामक महासुर को भी मारूँगी ॥ ४९ ॥ तब मेरा

मनुजाः शताक्षीमिति मां ततः ॥ ४७ ॥ ततोऽहमखिलं लोकमात्मदेहसमुद्भवैः। भरिष्यामि सुराः शाकैरावृष्टेः प्राणधारकैः ॥ ४८ ॥ शाकम्भरीति विख्यातिं तदा यास्याम्यहं भुवि। तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम् ॥ ४९ ॥ दुर्गा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति। पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले ॥ ५० ॥ रक्षांसि भक्षयिष्यामि मुनीनां त्राणकारणात्। तदा मां मुनयः सर्वे

नाम दुर्गा होगा। उसके बाद जब मैं भयानक रूप धारण करके, मुनियों की रक्षा के लिए हिमालय पर्वत पर, राक्षसों का भक्षण करूँगी, तब मुनि लोग विनम्र

होकर मेरी स्तुति करेंगे ॥ ५०-५१ ॥ तब मेरा नाम भीमा होगा। फिर जब अरुण नाम का दैत्य तीनों लोकों में उपद्रव करेगा, तब मैं असंख्य भ्रमरों का

स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तयः ॥ ५१ ॥ भीमा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति। यदारुणाख्यस्त्रैलोक्ये महाबाधां करिष्यति ॥ ५२ ॥ तदाहं भ्रामरं रूपं कृत्वाऽसंख्येयषट्पदम्। त्रैलोक्यस्य हितार्थाय वधिष्यामि महासुरम् ॥ ५३ ॥ भ्रामरीति च मां लोकास्तदा स्तोष्यन्ति सर्वतः। इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था

रूप धारण करके तीनों लोकों के हित के लिए उस महासुर का वध करूँगा ॥ ५२-५३ ॥ तब लोग मुझे भ्रामरी कहेंगे और मेरी स्तुति करेंगे। इस

प्रकार जब कभी दानव उपद्रव करेंगे, तब मैं अवतार लेकर उन शत्रुओं का संहार करूँगी ॥ ५४-५५ ॥

भविष्यति ॥ ५४ ॥ तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम् ॥ ॐ ॥ ५५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये देव्याः स्तुतिर्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

उवाच ४, अर्धश्लोकः १, श्लोकाः ५०, एवम् ५५, एवमादितः ६३० ॥

—:(०):—

द्वादशोऽध्यायः

दुर्गा सप्तशती के पाठ का माहात्म्य

ध्यानम्

ॐ विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम् । हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे ॥

मैं तीन नेत्रोंवाली दुर्गा देवी का ध्यान करता हूँ, भगवती के श्रीअङ्गों की प्रभा बिजली के समान है । वे सिंह के कंधे पर बैठी हुई भयंकर प्रतीत होती हैं । हाथों

में तलवार और ढाल लिये अनेक कन्याएँ उनकी सेवा में खड़ी हैं। माता अपने हाथों में चक्र, गदा, तलवार, ढाल, बाण, धनुष, पाश और तर्जनी मुद्रा धारण किये हुए हैं। इनका स्वरूप अग्निमय है तथा वे मस्तक पर चन्द्रमा का मुकुट धारण करती हैं।

'ॐ' देव्युवाच ॥ १ ॥

एभिः स्तवैश्च मां नित्यं स्तोष्यते यः समाहितः। तस्याहं सकलां बाधां नाशयिष्याम्यसंशयम् ॥ २ ॥ मधुकैटभनाशं च महिषासुरघातनम् । कीर्तयिष्यन्ति ये तद्वद् वधं शुम्भ-

देवी ने कहा—जो पुरुष सावधान होकर इन स्तोत्रों से नित्य मेरी स्तुति करेगा, मैं निस्सन्देह उसकी सब बाधाएँ दूर करूँगी ॥ १-२ ॥ जो लोग मधु-कैटभ के विनाश, महिषासुर के वध और शुम्भ-निशुम्भ के वध की कथा कहेंगे, अथवा अष्टमी, चतुर्दशी

या नवमी के दिन एकाग्रचित्त होकर भक्तिपूर्वक मेरे इस उत्तम माहात्म्य को सुनेंगे, उनसे किसी तरह का दुष्कर्म न होगा, और दुष्कर्मों से उत्पन्न आपत्ति न आवेगी। दरिद्रता न होगी और प्रियजनों का वियोग न होगा ॥ ३-५ ॥ शत्रु, चोर, राजा, शस्त्र,

निशुम्भयोः ॥ ३ ॥ अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां चैकचेतसः। श्रोष्यन्ति चैव ये भक्त्या मम माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ४ ॥ न तेषां दुष्कृतं किञ्चिद् दुष्कृतोत्था न चापदः। भविष्यति न दारिद्र्यं न चैवेष्टवियोजनम् ॥ ५ ॥ शत्रुतो न भयं तस्य दस्युतो वा न राजतः। न शस्त्रानलतोयौघात्कदाचित्सम्भविष्यति ॥ ६ ॥ तस्मा-

अग्नि और जल से कभी भय न होगा ॥ ६ ॥ इसलिए सावधान होकर भक्तिपूर्वक मेरे इस माहात्म्य को पढ़ना और सुनना चाहिए। यह उत्तम माहात्म्य सदा कल्याण

करनेवाला है ॥ ७ ॥ यह मेरा माहात्म्य महामारी से उत्पन्न सब उपद्रवों और तीन प्रकार के उत्पातों को शान्त करता है ॥ ८ ॥ जिस घर में यह माहात्म्य प्रतिदिन पढ़ा जाता है, उस घर को मैं कभी नहीं छोड़ती हूँ, उसी के समीप स्थित रहती हूँ ॥ ९ ॥

ममैतन्माहात्म्यं पठितव्यं समाहितैः । श्रोतव्यं च सदा भक्त्या परं स्वस्त्ययनं हि तत् ॥ ७ ॥ उपसर्गानशेषांस्तु महामारी-समुद्भवान् । तथा त्रिविधमुत्पातं माहात्म्यं शमयेन्मम ॥ ८ ॥ यत्रैतत्पठ्यते सम्यङ्नित्यमायतने मम । सदा न तद्विमोक्ष्यामि सांनिध्यं तत्र मे स्थितम् ॥ ९ ॥ बलिप्रदाने पूजायामग्निकार्ये महोत्सवे । सर्वं ममैतच्चरितमुच्चार्यं श्राव्यमेव च ॥ १० ॥ जानताऽ-

बलिप्रदान, पूजा, हवन और महोत्सव में मेरे इस सम्पूर्ण चरित्र को पढ़ना और सुनना चाहिए ॥ १० ॥ ज्ञानी अथवा अज्ञानी, चाहे जिस तरह भी बलिप्रदान, पूजा या हवन

करता है, मैं उसे बड़े प्रेम से ग्रहण करती हूँ ।। ११ ।। शरद् ऋतु में प्रत्येक वर्ष की महापूजा की जाती है, उसमें जो मनुष्य मेरे इस माहात्म्य को भक्तिपूर्वक सुनेगा, वह मेरी कृपा से सब बाधाओं से छूटकर धन-धान्य और पुत्र प्राप्त करेगा । इसमें कोई

जानता वापि बलिपूजां तथा कृताम् । प्रतीच्छिष्याम्यहं प्रीत्या वह्निहोमं तथा कृतम् ॥ ११ ॥ शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी । तस्यां ममैतन्माहात्म्यं श्रुत्वा भक्तिसमन्वितः ॥ १२ ॥ सर्वाबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वितः । मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः ॥ १३ ॥ श्रुत्वा ममैतन्माहात्म्यं तथा चोत्पत्तयः शुभाः । पराक्रमं च युद्धेषु जायते निर्भयः पुमान् ॥१४॥

सन्देह नहीं है ।। १२-१३ ।। मेरा यह माहात्म्य, मेरी उत्पत्ति, और युद्ध में मेरा पराक्रम सुनकर मनुष्य निर्भय हो जाते हैं ।। १४ ।। उनके शत्रुओं का नाश हो जाता है, कल्याण

होता है और उनके कुल की वृद्धि होती है ॥ १५ ॥ शान्ति कर्मों में, दुःस्वप्न देखने पर, और ग्रह-पीड़ा होने पर मेरा यह माहात्म्य सुनना चाहिए ॥ १६ ॥ इसके सुनने से ग्रह-पीड़ा और सब उपद्रव शान्त हो जाते हैं, और दुःस्वप्न सुस्वप्न हो जाते हैं ॥ १७ ॥

रिपवः संक्षयं यान्ति कल्याणं चोपपद्यते । नन्दते च कुलं पुंसां माहात्म्यं मम शृण्वताम् ॥ १५ ॥ शान्तिकर्मणि सर्वत्र तथा दुःस्वप्नदर्शने । ग्रहपीडासु चोग्रासु माहात्म्यं शृणुयान्मम ॥ १६ ॥ उपसर्गाः शमं यान्ति ग्रहपीडाश्च दारुणाः । दुःस्वप्नं च नृभिर्दृष्टं सुस्वप्नमुपजायते ॥ १७ ॥ बालग्रहाभिभूतानां बालानां शान्तिकारकम् । संघातभेदे च नृणां मैत्रीकरणमुत्तमम् ॥ १८ ॥ दुर्वृत्ता-

मेरा यह माहात्म्य बालग्रहों से पीड़ित बालकों को शान्त करनेवाला और मनुष्यों के आपस के वैमनस्य को मिटाकर मित्रता करानेवाला है ॥ १८ ॥ दुराचारी मनुष्यों का

बल नष्ट करनेवाला है। इस माहात्म्य के पढ़ने से राक्षस, भूत और पिशाचों का नाश हो जाता है ॥ १९ ॥ मेरा यह माहात्म्य मनुष्यों को मेरे समीप पहुँचानेवाला है। पशु, पुष्प, अर्घ्य, धूप, गन्ध, दीप, ब्राह्मण-भोजन, होम, वर्ष भर तक रात-दिन पंचामृत

नामशेषाणां बलहानिकरं परम् । रक्षोभूतपिशाचानां पठनादेव नाशनम् ॥ १९ ॥ सर्वं ममैतन्माहात्म्यं मम सन्निधिकारकम् । पशुपुष्पार्घ्यधूपैश्च गन्धदीपैस्तथोत्तमैः ॥ २० ॥ विप्राणां भोजनैर्होमैः प्रोक्षणीयैरहर्निशम् । अन्यैश्च विविधैर्भोगैः प्रदानैर्वत्सरेण या ॥२१॥ प्रीतिर्मे क्रियते साऽस्मिन् सकृत्सुचरिते श्रुते । श्रुतं हरति पापानि तथाऽऽरोग्यं प्रयच्छति ॥ २२ ॥ रक्षां करोति भूतेभ्यो जन्मनां

का अभिषेक और अन्य अनेक प्रकार के भोग, जो मेरे प्रसन्न करने के लिए लगाये जाते हैं, उनका फल इस माहात्म्य के पढ़ने अथवा सुनने से ही मिल जाता है। इस माहात्म्य के सुनने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं और मनुष्य नीरोग हो जाता है ॥ २०-२२ ॥

कीर्तनं मम। युद्धेषु चरितं यन्मे दुष्टदैत्यनिबर्हणम् ॥ २३ ॥
तस्मिञ्छ्रुते वैरिकृतं भयं पुंसां न जायते। युष्माभिः स्तुतयो याश्च
याश्च ब्रह्मर्षिभिः कृताः ॥ २४ ॥ ब्रह्मणा च कृतास्तास्तु प्रयच्छन्ति
शुभां मतिम्। अरण्ये प्रान्तरे वापि दावाग्निपरिवारितः ॥ २५ ॥
दस्युभिर्वा वृतः शून्ये गृहीतो वापि शत्रुभिः। सिंहव्याघ्रानुयातो

मेरे जन्मों की कथा सुनने से भूतों से रक्षा होती है, और मैंने युद्ध में जो दुष्ट दैत्यों का विनाश किया है, उस चरित्र के सुनने से मनुष्यों को शत्रुओं का भय नहीं रहता। जो स्तुति तुम लोगों ने, ब्रह्मर्षियों ने और ब्रह्मा ने की है, उसके पढ़ने से अच्छी बुद्धि मिलती है। जो मनुष्य वन में दावाग्नि से घिर गया हो, जिसे निर्जन स्थान में चोरों ने घेर लिया हो, जिसे शत्रुओं ने पकड़ लिया हो, वन में सिंह, बाघ या जंगली हाथियों ने घेर लिया हो, राजा ने कुपित होकर जिसे प्राणदंड की आज्ञा दी हो, जो बन्धन में

पड़ा हो, जिसकी नाव समुद्र में तूफान में पड़ गई हो, युद्ध में जिस पर तीक्ष्ण शस्त्रों का प्रहार हो रहा हो, अथवा भयानक बाधाओं की वेदना से जो पीड़ित हो, वह

वा वने वा वनहस्तिभिः ॥ २६ ॥ राज्ञा क्रुद्धेन चाज्ञप्तो वध्यो बन्धगतोऽपि वा । आघूर्णितो वा वातेन स्थितः पोते महार्णवे ॥२७॥ पतत्सु चापि शस्त्रेषु संग्रामे भृशदारुणे । सर्वाबाधासु घोरासु वेदनाभ्यर्दितोऽपि वा ॥ २८ ॥ स्मरन्ममैतच्चरितं नरो मुच्येत सङ्कटात् । मम प्रभावात्सिंहाद्या दस्यवो वैरिणस्तथा ॥ २९ ॥ दूरादेव पलायन्ते स्मरतश्चरितं मम ॥ ३० ॥

मनुष्य मेरे इस माहात्म्य का स्मरण करने से सब दुःखों से छूट जाता है । मेरे चरित्र का पाठ करने से तथा मेरे प्रभाव से सिंह, चोर और शत्रु आदि दूर से ही भाग जाते हैं ॥ २३-३० ॥

मेधा ऋषि कहते हैं—यह कहकर भगवती चण्डिका देवताओं के देखते ही देखते उसी स्थान पर अन्तर्द्धान हो गईं। देवता शत्रुओं का विनाश हो जाने से निर्भय हो गये और पहले की तरह अपने अधिकार पाकर यज्ञ का भाग लेने लगे।

ऋषिरुवाच ॥ ३१ ॥

इत्युक्त्वा सा भगवती चण्डिका चण्डविक्रमा ॥ ३२ ॥
पश्यतामेव देवानां तत्रैवान्तरधीयत। तेऽपि देवा निरातङ्काः
स्वाधिकारान् यथा पुरा ॥ ३३ ॥ यज्ञभागभुजः सर्वे चक्रुर्विनिहत-
तारयः। दैत्याश्च देव्या निहते शुम्भे देवरिपौ युधि ॥ ३४ ॥
जगद्विध्वंसिनि तस्मिन् महोग्रेऽतुलविक्रमे। निशुम्भे च महावीर्ये
शेषाः पातालमाययुः ॥ ३५ ॥ एवं भगवती देवी सा नित्यापि पुनः

देवताओं के शत्रु, जगत् का विध्वंस करनेवाले, महापराक्रमी शुम्भ-निशुम्भ के मारे जाने पर, बचे हुए दैत्य पाताल को चले गये ॥ ३१-३५ ॥ हे राजन्, इस प्रकार वह

नित्या भगवती बार-बार उत्पन्न होकर संसार की रक्षा करती है ।। ३६ ।। वही संसार को मोहित करती है और वही इस जगत् को उत्पन्न करती है । उसी से याचना करने पर ज्ञान प्राप्त होता है, और जब वह सन्तुष्ट होती है तब ऋद्धि देती है ।। ३७ ।। हे

पुनः । सम्भूय कुरुते भूप जगतः परिपालनम् ॥ ३६ ॥ तयैतन्मोह्यते विश्वं सैव विश्वं प्रसूयते । सा याचिता च विज्ञानं तुष्टा ऋद्धिं प्रयच्छति ॥ ३७ ॥ व्याप्तं तयैतत्सकलं ब्रह्माण्डं मनुजेश्वर । महाकाल्या महाकाले महामारीस्वरूपया ॥ ३८ ॥ सैव काले महामारी सैव सृष्टिर्भवत्यजा । स्थितिं करोति भूतानां सैव काले

राजन्, वह इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है । वह प्रलयकाल में महाकाली और महामारी का रूप धारण करती है ।। ३८ ।। वह प्रलय के समय महामारी हो जाती है और जगत् की उत्पत्ति के समय सृष्टि-रूपा होती है । संसार का पालन करने के समय

वही सनातनी देवी सब प्राणियों का पालन करती है ॥ ३९ ॥ उन्नति के समय वही मनुष्यों के घरों में लक्ष्मी-रूप होकर स्थित होती है। वही वृद्धि करती है, और आपत्ति के समय वही लक्ष्मी विनष्ट हो जाती है ॥ ४० ॥ स्तुति करने से तथा पुष्प,

सनातनी ॥ ३९ ॥ भवकाले नृणां सैव लक्ष्मीर्वृद्धिप्रदा गृहे। सैवाभावे तथालक्ष्मीर्विनाशायोपजायते ॥ ४० ॥ स्तुता सम्पूजिता पुष्पैर्धूपगन्धादिभिस्तथा। ददाति वित्तं पुत्रांश्च मतिं धर्मे गतिं शुभाम् ॥ ॐ ॥ ४१ ॥

धूप और गन्ध आदि से पूजन करने से वही भगवती धन, पुत्र और धर्म में सद्बुद्धि देती है ॥ ४१ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये फलस्तुतिर्नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

उवाच २, अर्धश्लोकौ २, श्लोकाः ३७, एवम् ४१, एवमादितः ६७१ ॥

—:(०):—

त्रयोदशोऽध्यायः

सुरथ और वैश्य को देवी का वरदान

ध्यानम्

ॐ बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम् । पाशाङ्कुश-वराभीतीर्धारयन्तीं शिवां भजे ॥

जो उषाकालीन सूर्यमण्डल की सी कान्ति धारण करनेवाली हैं, जिनके चार भुजाएँ और तीन नेत्र हैं तथा जो अपने हाथों में पाश, अंकुश, वर एवं अभय की मुद्रा धारण किये रहती हैं, उन शिवा देवी का मैं भजन करता हूँ ।

मेधा ऋषि कहते हैं—हे राजन्, हमने देवी का यह उत्तम माहात्म्य तुमसे कहा। जिस देवी का यह प्रभाव तुमने सुना है, वही देवी इस जगत् को धारण करती है ॥ १-२ ॥ वही भगवती ज्ञान उत्पन्न करती है। वह भगवान विष्णु की माया है, उसी

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

एतत्ते कथितं भूप देवीमाहात्म्यमुत्तमम्। एवंप्रभावा सा देवी ययेदं धार्यते जगत् ॥ २ ॥ विद्या तथैव क्रियते भगवद्विष्णुमायया। तया त्वमेष वैश्यश्च तथैवान्ये विवेकिनः ॥ ३ ॥ मोह्यन्ते मोहिताश्चैव मोहमेष्यन्ति चापरे। तामुपैहि महाराज शरणं

के प्रभाव से तुमको और इस वैश्य को मोह हुआ है। उसके प्रभाव से अन्य बड़े-बड़े ज्ञानी पुरुष मोहित हो चुके हैं, मोहित हैं और मोहित होंगे। इसलिए हे महाराज, तुम उसी परमेश्वरी की शरण में जाओ। जो मनुष्य उसकी आराधना करते हैं, उनको वह

भोग, स्वर्ग और मोक्ष देती है ॥ ३-५ ॥ मार्कण्डेय कहते हैं—मेधा ऋषि का यह वचन सुनकर, राज्य छिन जाने से और ममता से दुखित महाराज सुरथ उनको प्रणाम करके

परमेश्वरीम् ॥ ४ ॥ आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा ॥ ५ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ ६ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा सुरथः स नराधिपः ॥ ७ ॥ प्रणिपत्य महाभागं तमृषिं शंसितव्रतम् । निर्विण्णोऽतिममत्वेन राज्यापहरणेन च ॥ ८ ॥ जगाम सद्यस्तपसे स च वैश्यो महामुने । संदर्शनार्थमम्बाया नदीपुलिनसंस्थितः ॥ ९ ॥ स च वैश्यस्तपस्तेपे

शीघ्र तपस्या करने चले गये । हे महामुने, वह वैश्य भी भगवती के दर्शनार्थ तपस्या करने के लिए नदी के किनारे गया ॥ ६-९ ॥ वैश्य ने देवीसूक्त का जप करके कठोर

तपस्या की। राजा और वैश्य, दोनों नदी के किनारे देवी की मूर्ति मिट्टी की बनाकर पुष्प, धूप, होम और तर्पण करके नित्य पूजा करने लगे। वे पहले थोड़ा भोजन करते थे, फिर निराहार रहने लगे। एकाग्रचित्त होकर अपने शरीर के रुधिर से बलि देने

देवीसूक्तं परं जपन्। तौ तस्मिन् पुलिने देव्याः कृत्वा मूर्तिं महीमयीम् ॥ १० ॥ अर्हणां चक्रतुस्तस्याः पुष्पधूपाग्नितर्पणैः। निराहारौ यताहारौ तन्मनस्कौ समाहितौ ॥ ११ ॥ ददतुस्तौ बलिं चैव निजगात्रासृगुक्षितम्। एवं समाराधयतोस्त्रिभिर्वर्षैर्यतात्मनोः ॥ १२ ॥ परितुष्टा जगद्धात्री प्रत्यक्षं प्राह चण्डिका ॥ १३ ॥

लगे। इस प्रकार सावधानी से तीन वर्ष तपस्या करने पर जगद्धात्री चण्डिका प्रसन्न हुईं और उन दोनों के सामने आकर बोलीं ॥ १०-१३ ॥ देवी ने कहा—हे राजन्, मैं

तुमसे सन्तुष्ट हूँ। तुम जो कुछ माँगोगे, वह मैं दूँगी। तुम जो चाहते हो, वह मुझसे प्राप्त करो, और हे वैश्य, तुम भी मुझसे जो प्रार्थना करोगे, वह पावोगे ॥ १३-१५ ॥

देव्युवाच ॥ १४ ॥

यत्प्रार्थ्यते त्वया भूप त्वया च कुलनन्दन । मत्तस्तत्प्राप्यतां सर्वं परितुष्टा ददामि तत् ॥ १५ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ १६ ॥

ततो वव्रे नृपो राज्यमविभ्रंश्यन्यजन्मनि । अत्रैव च निजं राज्यं हतशत्रुबलं बलात् ॥ १७ ॥ सोऽपि वैश्यस्ततो ज्ञानं वव्रे

मार्कण्डेय ऋषि कहते हैं—देवी का यह वचन सुनकर राजा ने कहा—मुझे दूसरे जन्म में चिरस्थायी राज्य मिले, जो कभी नष्ट न हो और इस जन्म में मैं अपने बल से

शत्रुओं को मारकर अपना राज्य प्राप्त करूँ। उसके बाद समाधि वैश्य ने संसार से विरक्त होकर "यह मेरा है, मैं इसका स्वामी हूँ" इस प्रकार के मोह का नाश करने-

निर्विण्णमानसः। ममेत्यहमिति प्राज्ञः सङ्गविच्युतिकारकम् ॥ १८ ॥

देव्युवाच ॥ १९ ॥

स्वल्पैरहोभिर्नृपते स्वं राज्यं प्राप्स्यते भवान् ॥ २० ॥ हत्वा रिपूनस्खलितं तव तत्र भविष्यति ॥ २१ ॥ मृतश्च भूयः सम्प्राप्य जन्म देवाद्विवस्वतः ॥ २२ ॥ सावर्णिको नाम मनुर्भवान् भुवि भविष्यति ॥ २३ ॥ वैश्यवर्य त्वया यश्च वरोऽस्मत्तोऽभि-

वाला तत्त्वज्ञान माँगा ॥ १६-१८ ॥ देवी ने कहा—हे राजन्, थोड़े ही दिनों में तुम अपना राज्य पाओगे। तुम अपने शत्रुओं को मारकर अटल राज्य करोगे, और जब

वह शरीर त्यागोगे तब सूर्य से जन्म पाकर सावर्णि नामक मनु होगे। देवी ने समाधि वैश्य से कहा—हे वैश्यवर्य, तुमने जो अभीष्ट वर माँगा है, वह मैं तुमको देती हूँ। तुम

वाञ्छितः ॥ २४ ॥ तं प्रयच्छामि संसिद्ध्यै तव ज्ञानं भविष्यति ॥ २५ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ २६ ॥

इति दत्त्वा तयोर्देवी यथाभिलषितं वरम् ॥ २७ ॥ बभूवान्तर्हिता सद्यो भक्त्या ताभ्यामभिष्टुता। एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः ॥ २८ ॥ सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता

मोक्ष के लिए ज्ञान प्राप्त करोगे ॥ १९-२५ ॥ मार्कण्डेयजी कहते हैं—इस प्रकार देवी ने राजा और वैश्य को अभीष्ट वर दिया। उन दोनों ने भक्तिपूर्वक देवी की स्तुति की।

उसके बाद देवी शीघ्र अन्तर्द्धान हो गईं ॥ २६-२७ ॥ देवी के वरदान से राजा सुरथ सूर्य से जन्म पाकर सावर्णि मनु होंगे ॥ २८-२९ ॥

मनुः ॥ २८ ॥ एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः ।
सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः ॥ क्लींॐ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये सुरथवैश्ययोर्वरप्रदानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

उवाच ६, अर्धश्लोकाः ११, श्लोकाः १२, एवम् २९, एवमादितः ७०० ॥ समस्ता उवाचमन्त्राः ५७, अर्धश्लोकाः ४२, श्लोकाः ५३५, अवदानानि ६६ ॥

◆◆◆◆

पर्यवसान विधि एवं क्रिया

सप्तशती का पाठ पूरा होने पर साधक पहले नवार्ण-जप करे, फिर देवीसूक्त के पाठ का विधान है। अन्य समस्त कार्य पूर्ववत् होंगे। नवार्ण-विधि इस प्रकार है—

विनियोगः

श्रीगणपतिर्जयति। ॐ अस्य श्रीनवार्णमन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः, ऐं बीजम्, ह्रीं शक्तिः, क्लीं कीलकम्, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यासः

ब्रह्मविष्णुरुद्रऋषिभ्यो नमः, शिरसि। गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दोभ्यो नमः, मुखे। महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीदेवताभ्यो नमः, हृदि। ऐं बीजाय नमः, गुह्ये। ह्रीं शक्तये नमः, पादयोः। क्लीं कीलकाय नमः, नाभौ।

'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' इति मूलेन करौ संशोध्य—

करन्यासः

ॐ ऐं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः। ॐ क्लीं मध्यमाभ्यां नमः। ॐ चामुण्डायै अनामिकाभ्यां नमः। ॐ विच्चे कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादिन्यासः

ॐ ऐं हृदयाय नमः। ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा। ॐ क्लीं शिखायै वषट्। ॐ चामुण्डायै कवचाय हुम्। ॐ विच्चे नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे अस्त्राय फट्।

अक्षरन्यासः

ॐ ऐं नमः, शिखायाम्। ॐ ह्रीं नमः, दक्षिणनेत्रे। ॐ क्लीं नमः, वामनेत्रे। ॐ चां नमः, दक्षिणकर्णे। ॐ मुं नमः, वामकर्णे। ॐ डां नमः, दक्षिणनासापुटे। ॐ यैं नमः, वामनासापुटे। ॐ विं नमः, मुखे। ॐ च्चें नमः, गुह्ये।

एवं विन्यस्याष्टवारं मूलेन व्यापकं कुर्यात्।

दिङ्न्यासः

ॐ ऐं प्राच्यै नमः । ॐ ऐं आग्नेय्यै नमः । ॐ ह्रीं दक्षिणायै नमः । ॐ ह्रीं नैर्ऋत्यै नमः । ॐ क्लीं प्रतीच्यै नमः । ॐ क्लीं वायव्यै नमः । ॐ चामुण्डायै उदीच्यै नमः । ॐ चामुण्डायै ऐशान्यै नमः । ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ऊर्ध्वायै नमः । ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे भूम्यै नमः ।

ध्यानम्

खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम् । नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम् ॥ १ ॥ अक्षस्रक्परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुः कुण्डिकां दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम् । शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम् ॥ २ ॥ घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुः सायकं हस्ताब्जै-

दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम् । गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महापूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम् ।। ३ ।।

तत्पश्चात् न्यास और ध्यान करके तन्मयता से देवी की पूजा करे। पुनः १०८ या १००८ बार नवार्ण मन्त्र का जप करना चाहिये। जप आरम्भ करने के पूर्व 'ऐं ह्रीं अक्षमालिकायै नमः' इस मन्त्र से माला की पूजा करके निम्नवत् प्रार्थना करे—

ॐ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि । चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ।। ॐ अविघ्नं कुरु माले त्वं गृह्णामि दक्षिणे करे । जपकाले च सिद्धयर्थं प्रसीद मम सिद्धये ।।

ॐ अक्षमालाधिपतये सुसिद्धिं देहि देहि सर्वमन्त्रार्थसाधिनि साधय साधय सर्वसिद्धिं परिकल्पय परिकल्पय मे स्वाहा ।

इस प्रकार प्रार्थना करके जप आरम्भ करे। जप के पूर्ण होने पर भगवती को समर्पित करते हुए कहे—

गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ॥

पुनः निम्नांकित रीति से न्यास करें—

करन्यासः

ॐ ह्रीं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ चं तर्जनीभ्यां नमः । ॐ डिं मध्यमाभ्यां नमः । ॐ कां अनामिकाभ्यां नमः । ॐ यैं कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ ह्रीं चण्डिकायै करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

हृदयादिन्यासः

ॐ खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ।
शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा ॥ हृदयाय नमः ॥
ॐ शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके ।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च ॥ शिरसे स्वाहा ॥
ॐ प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे ।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ॥ शिखायै वषट् ॥

ॐ सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते ।
यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम् ।। कवचाय हुम् ।।
ॐ खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके ।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ।। नेत्रत्रयाय वौषट् ।।
ॐ सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ।। अस्त्राय फट् ।।

ध्यानम्

ॐ विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां कन्याभिः करवालखेट-बिलसद्धस्ताभिरासेबिताम् । हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे ।।

—:०:—

अथ ऋग्वेदोक्तं देवीसूक्तम्

ॐ अहमित्यष्टर्चस्य सूक्तस्य वागाम्भृणी ऋषिः, सच्चित्सुखात्मकः सर्वगतः परमात्मा देवता, द्वितीयाया ऋचो जगती, शिष्टानां त्रिष्टुप् छन्दः, देवीमाहात्म्यपाठे विनियोगः।

ध्यानम्

ॐ सिंहस्था शशिशेखरा मरकतप्रख्यैश्चतुर्भिर्भुजैः
शङ्खं चक्रधनुःशरांश्च दधती नेत्रैस्त्रिभिः शोभिता।
आमुक्ताङ्गदहारकङ्कणरणत्काञ्चीरणन्नूपुरा
दुर्गा दुर्गतिहारिणी भवतु नो रत्नोल्लसत्कुण्डला॥

देवीसूक्तम्

ॐ अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः । अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥ १ ॥ अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् । अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते ॥ २ ॥ अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् । तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥ ३ ॥ मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम् । अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ॥ ४ ॥ अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः । यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥ ५ ॥ अहं रुद्राय

धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ । अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥ ६ ॥ अहं सुवे पितरमस्य मूर्द्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे । ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोपस्पृशामि ॥ ७ ॥ अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा । परो दिवापर एना पृथिव्यैतावती महिना संबभूव ॥ ८ ॥

इति ऋग्वेदोक्तं देवीसूक्तं समाप्तम् ।

—:०:—

अथ तन्त्रोक्तं देवीसूक्तम्

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः । नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥ १ ॥ रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो

नमः। ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः ॥ २ ॥ कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः । नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः ॥ ३ ॥ दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै । ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः ॥ ४ ॥ अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः । नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥ ५ ॥ या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ६ ॥ या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ७ ॥ या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ८ ॥ या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ९ ॥ या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै

नमो नमः ॥ १० ॥ या देवी सर्वभूतेषु छायारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ११ ॥ या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १२ ॥ या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १३ ॥ या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १४ ॥ या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १५ ॥ या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १६ ॥ या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १७ ॥ या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १८ ॥ या देवी

सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१६॥ या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २० ॥ या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २१ ॥ या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २२ ॥ या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २३ ॥ या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २४ ॥ या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २५ ॥ या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो

नमः ॥ २६ ॥ इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या । भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः ॥ २७ ॥ चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत् । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २८ ॥ स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रयात्तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता । करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥ २९ ॥ या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितैरस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते । या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्तिभिः ॥ ३० ॥

॥ इति तन्त्रोक्तम् देवीसूक्तम् समाप्तम् ॥

—:०:—

अथ प्राधानिकं रहस्यम्

ॐ अस्य श्रीसप्तशतीरहस्यत्रयस्य नारायण ऋषिरनुष्टुप् छन्दः, महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः, यथोक्तफलावाप्त्यर्थं जपे विनियोगः ।

राजोवाच

भगवन्नवतारा मे चण्डिकायास्त्वयोदिताः । एतेषां प्रकृतिं ब्रह्मन् प्रधानं वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥ आराध्यं यन्मया देव्याः स्वरूपं येन च द्विज । विधिना ब्रूहि सकलं यथावत्प्रणतस्य मे ॥ २ ॥

ॐ सप्तशती के इन तीनों रहस्यों के नारायण ऋषि, अनुष्टुप् छन्द तथा महाकाली, महालक्ष्मी एवं महासरस्वती देवता हैं । शास्त्रोक्त फल की प्राप्ति के लिये जप में इनका विनियोग होता है ।

राजा ने कहा—हे भगवन्, आपने चण्डिका देवी के अवतारों का वर्णन किया, किन्तु हे ब्रह्मन्, अब उन अवतारों का मूल मुख्य स्वरूप बतलाइए ॥ १ ॥ और हे द्विज, देवी के जिस स्वरूप की आराधना जिस विधि से मुझे करनी चाहिए वह स्वरूप और आराधना करने की विधि मुझ विनीत से विधिपूर्वक कहिए ॥ २ ॥

ऋषिरुवाच

इदं रहस्यं परममनाख्येयं प्रचक्षते । भक्तोऽसीति न मे किञ्चित्तवावाच्यं नराधिप ॥ ३ ॥ सर्वस्याद्या महालक्ष्मीस्त्रिगुणा परमेश्वरी । लक्ष्यालक्ष्यस्वरूपा सा व्याप्य कृत्स्नं व्यवस्थिता ॥ ४ ॥ मातुलिङ्गं

ऋषि ने कहा—यह रहस्य परम गुप्त है, अर्थात् किसी से कहने योग्य नहीं है; परंतु हे राजन्, तुम भक्त हो, इसलिए ऐसा कोई विषय नहीं है, जो तुमसे न कहूँ ॥ ३ ॥ सबकी आदिरूपा सत्त्व रज तम तीनों गुणवाली परमेश्वरी महालक्ष्मी हैं। वह लक्ष्य और अलक्ष्यस्वरूपा है तथा सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त हैं ॥ ४ ॥ हे राजन्, वह हाथों में मातुलुंग

(बिजौराफल), गदा, खेट और पानपात्र तथा सिर पर नाग, लिंग और योनि धारण करती हैं ॥ ५ ॥ वह तपाये हुए सुवर्ण के समान कान्तिवाली देवी तपाये हुए सोने के सुन्दर आभूषण धारण किये, अपने तेज से सम्पूर्ण आकाश परिपूर्ण करती हैं ॥ ६ ॥

गदां खेटं पानपात्रं च बिभ्रती । नागं लिङ्गं च योनिं च बिभ्रती नृप मूर्द्धनि ॥ ५ ॥ तप्तकाञ्चन वर्णाभा तप्तकाञ्चनभूषणा । शून्यं तदखिलं स्वेन पूरयामास तेजसा ॥६॥ शून्यं तदखिलं लोकं विलोक्य परमेश्वरी । बभार परमं रूपं तमसा केवलेन हि ॥ ७ ॥ सा भिन्नाञ्जनसंकाशा दंष्ट्राङ्कितवरानना । विशाललोचना नारी बभूव तनुमध्यमा ॥ ८ ॥

उस परमेश्वरी ने सम्पूर्ण संसार को शून्य देखकर केवल तमोगुण से एक दूसरा श्रेष्ठरूप धारण किया ॥ ७ ॥ वह काजल के ढेर के समान कान्तिवाली, दाढ़ों से शोभायमान सुन्दर मुखवाली, विशाल नेत्रों से शोभित सूक्ष्म कटिवाली, स्त्री हुई ॥ ८ ॥ खड्ग,

पानपात्र, सिर तथा खेट से शोभित चार भुजावाली और कबंध का हार तथा साँपों के सिर की माला धारण किये हुए उस तामसी स्त्री ने महालक्ष्मी से कहा—हे माता, तुम मेरा नाम रक्खो और मुझे काम बताओ, मैं तुमको नमस्कार करती हूँ ॥ ९-१० ॥ महा-

खड्गपात्रशिरःखेटैरलंकृतचतुर्भुजा । कबन्धहारं शिरसा बिभ्राणा हि शिरःस्रजम् ॥ ९ ॥ सा प्रोवाच महालक्ष्मीं तामसी प्रमदोत्तमा । नाम कर्म च मे मातर्देहि तुभ्यं नमो नमः ॥ १० ॥ तां प्रोवाच महालक्ष्मीस्तामसीं प्रमदोत्तमाम् । ददामि तव नामानि यानि कर्माणि तानि ते ॥ ११ ॥ महामाया महाकाली महामारी क्षुधा

लक्ष्मी ने उस तामसी स्त्री से कहा—मैं तुम्हारे नाम और कर्म बताती हूँ ॥ ११ ॥ महामाया, महाकाली, महामारी, क्षुधा, तृषा, निद्रा, तृष्णा, एकवीरा, कालरात्रि और

दुरत्यया, यह तुम्हारे नाम कर्म के अनुसार हैं। इन नामों से तुम्हारे कर्मों को जानकर जो मनुष्य इनको पढ़ता है वह सुख पाता है ॥ १२-१३ ॥ हे राजन्, महालक्ष्मी ने उससे यह कहकर अतिशुद्ध, सतोगुणी चन्द्रमा के समान कान्तिवाला दूसरा स्वरूप

तृषा। निद्रा तृष्णा चैकवीरा कालरात्रिर्दुरत्यया ॥ १२ ॥ इमानि तव नामानि प्रतिपाद्यानि कर्मभिः। एभिः कर्माणि ते ज्ञात्वा योऽधीते सोऽश्नुते सुखम् ॥ १३ ॥ तामित्युक्त्वा महालक्ष्मीः स्वरूपमपरं नृप। सत्त्वाख्येनातिशुद्धेन गुणेनेन्दुप्रभं दधौ ॥ १४ ॥ अक्षमालाङ्कुशधरा वीणापुस्तकधारिणी। सा बभूव वरा नारी

धारण किया ॥ १४ ॥ वह उत्तम स्त्री अक्षमाला, अंकुश, वीणा और पुस्तक धारण किये थी। महालक्ष्मी ने उसके भी ये नाम रख दिये—महाविद्या, महावाणी, भारती, वाक्,

सरस्वती, आर्या, ब्राह्मी, कामधेनु, बीजगर्भा और धीश्वरी ॥ १५-१६ ॥ उसके बाद महालक्ष्मी ने महाकाली और महासरस्वती से कहा—तुम दोनों देवी अपने स्वरूप के अनुसार स्त्री-पुरुष का जोड़ा उत्पन्न करो ॥ १७ ॥ महालक्ष्मी ने उन दोनों से यह

नामान्यस्यै च सा ददौ ॥ १५ ॥ महाविद्या महावाणी भारती वाक् सरस्वती । आर्या ब्राह्मी कामधेनुर्वेदगर्भा च धीश्वरी ॥ १६ ॥ अथोवाच महालक्ष्मीर्महाकालीं सरस्वतीम् । युवां जनयतां देव्यौ मिथुने स्वानुरूपतः ॥ १७ ॥ इत्युक्त्वा ते महालक्ष्मीः ससर्ज मिथुनं स्वयम् । हिरण्यगर्भौ रुचिरौ स्त्रीपुंसौ कमलासनौ ॥१८॥ ब्रह्मन् विधे विरिञ्चेति धातरित्याह तं नरम् । श्रीः पद्मे कमले लक्ष्मीत्याह माता

कहकर हिरण्यगर्भ, सुन्दर, कमल पर बैठा हुआ स्त्री-पुरुष का एक जोड़ा स्वयं उत्पन्न किया ॥ १८ ॥ पुरुष को हे ब्रह्मन्, हे विधे, हे विरंचि, हे धातः, स्त्री को श्री, पद्मे, कमले

और लक्ष्मी नाम से संबोधित किया ॥ १९ ॥ महाकाली और महासरस्वती ने भी स्त्री-पुरुष के जोड़े उत्पन्न किये। हे राजन्, उनके भी स्वरूप और नाम कहता हूँ ॥ २० ॥ महाकाली ने नीलकण्ठ, रक्तबाहु, श्वेताङ्ग, चन्द्रशेखर पुरुष और एक गौरी स्त्री उत्पन्न

च तां स्त्रियम् ॥ १९ ॥ महाकाली भारती च मिथुने सृजतः सह । एतयोरपि रूपाणि नामानि च वदामि ते ॥ २० ॥ नीलकण्ठं रक्तबाहुं श्वेताङ्गं चन्द्रशेखरम् । जनयामास पुरुषं महाकाली सितां स्त्रियम् ॥ २१ ॥ स रुद्रः शंकरः स्थाणुः कपर्दी च त्रिलोचनः । त्रयी विद्या कामधेनुः सा स्त्री भाषाक्षरा स्वरा ॥ २२ ॥ सरस्वती

किया ॥ २१ ॥ पुरुष के रुद्र, शंकर, स्थाणु, कपर्दी और त्रिलोचन, तथा स्त्री के त्रयी, विद्या, कामधेनु, भाषा, अक्षर और स्वरा नाम रक्खे ॥ २२ ॥ हे राजन्, सरस्वती ने

गौरी स्त्री और कृष्ण पुरुष उत्पन्न किया। उन दोनों के भी नाम कहता हूँ ॥ २३ ॥ पुरुष के विष्णु, कृष्ण, हृषीकेश, वासुदेव और जनार्दन तथा स्त्री के उमा, गौरी, सती, चण्डी, सुन्दरी, सुभगा और शिवा नाम रक्खा ॥ २४ ॥ इस प्रकार वे तीनों स्त्रियाँ

स्त्रियं गौरीं कृष्णं च पुरुषं नृप। जनयामास नामानि तयोरपि वदामि ते ॥ २३ ॥ विष्णुः कृष्णो हृषीकेशो वासुदेवो जनार्दनः। उमा गौरी सती चण्डी सुन्दरी सुभगा शिवा ॥ २४ ॥ एवं युवतयः सद्यः पुरुषत्वं प्रपेदिरे। चक्षुष्मन्तो नु पश्यन्ति नेतरेऽतद्विदो जनाः ॥ २५ ॥ ब्रह्मणे प्रददौ पत्नीं महालक्ष्मीर्नृप त्रयीम्। रुद्राय

शीघ्र ही पुरुषत्व को प्राप्त हो गईं। उनको दिव्य दृष्टिवाले पुरुष ही देखते हैं, दूसरे लोग नहीं देखते ॥ २५ ॥ हे नृप, महालक्ष्मी ने वेदत्रयी पत्नी ब्रह्मा को, वर देनेवाली

गौरी शिव को और लक्ष्मी विष्णु को दिया ॥ २६ ॥ ब्रह्मा ने स्वरा के साथ मिलकर एक अण्ड उत्पन्न किया और वीर्यवान् रुद्र भगवान् ने गौरी के साथ मिलकर उसे फोड़ा ॥ २७ ॥ हे राजन्, उस अण्ड से महतत्त्व आदि स्थावर-जंगमरूप महा-

गौरीं वरदां वासुदेवाय च श्रियम् ॥ २६ ॥ स्वरया सह संभूय विरिञ्चोऽण्डमजीजनत् । बिभेद भगवान् रुद्रस्तद् गौर्या सह वीर्यवान् ॥ २७ ॥ अण्डमध्ये प्रधानादि कार्यजातमभून्नृप । महाभूतात्मकं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ २८ ॥ पुपोष पालयामास तल्लक्ष्म्या सह केशवः । संजहार जगत्सर्वं सह गौर्या महेश्वरः ॥२९॥

भूतात्मक सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ ॥ २८ ॥ भगवान् विष्णु ने लक्ष्मी के साथ उसका पालन किया और महादेव ने गौरी के साथ उस सम्पूर्ण जगत् का संहार किया ॥ २९ ॥

हे महाराज, महालक्ष्मी सर्वसत्त्वमयी ईश्वरी है। वह निराकार है और साकार भी, उसके अनेक नाम हैं ॥ ३० ॥ वह अपने नामों के सिवा अन्य किसी प्रत्यक्ष प्रमाण से

महालक्ष्मीर्महाराज सर्वसत्त्वमयीश्वरी। निराकारा च साकारा सैव नानाभिधानभृत् ॥ ३० ॥ नामान्तरैर्निरूप्यैषा नाम्ना नान्येन केनचित् ॥ ॐ ॥ ३१ ॥

नहीं जानी जा सकती ॥ ३१ ॥

॥ इति प्राधानिकं रहस्यं समाप्तम् ॥

—:०:—

अथ वैकृतिकं रहस्यम्

ऋषि ने कहा—हे राजन्, मैंने जिस तामसी, सात्त्विकी और राजसी (त्रिगुणा) देवी का वर्णन किया है वह शर्वा, चण्डिका, दुर्गा, भद्रा और भगवती भी कहाती हैं ॥ १ ॥

ऋषिरुवाच

ॐ त्रिगुणा तामसी देवी सात्त्विकी या त्रिधोदिता । सा शर्वा चण्डिका दुर्गा भद्रा भगवतीर्यते ॥ १ ॥ योगनिद्रा हरेरुक्ता महाकाली तमोगुणा । मधुकैटभनाशार्थं यां तुष्टावाम्बुजासनः ॥ २ ॥

तमोगुणवाली महाकाली विष्णु भगवान् की योगनिद्रा है, जिसकी स्तुति मधुकैटभ के नाश के लिए ब्रह्मा ने की थी ॥ २ ॥ वह काजल के समान काली हैं। उसके दस मुँह, दस

भुजाएँ दस पैर और तीस विशाल नेत्र हैं ॥ ३ ॥ हे राजन्, वह सुन्दर दाढ़ों और दाँतोंवाली महाकाली भयंकररूपिणी होने पर भी भक्तों को रूप, सौभाग्य और कान्ति आदि महाश्री देनेवाली हैं ॥ ४ ॥ वह खड्ग, बाण, गदा, शूल, शंख, चक्र, भुशुंडी, परिघ,

दशवक्त्रा दशभुजा दशपादाञ्जनप्रभा । विशालया राजमाना त्रिंशल्लोचनमालया ॥ ३ ॥ स्फुरद्दशनदंष्ट्रा सा भीमरूपापि भूमिप । रूपसौभाग्यकान्तीनां सा प्रतिष्ठा महाश्रियः ॥ ४ ॥ खड्गबाणगदा-शूलचक्रशङ्खभुशुण्डिभृत् । परिघं कार्मुकं शीर्षं निश्च्योतद्रुधिरं दधौ ॥ ५ ॥ एषा सा वैष्णवी माया महाकाली दुरत्यया । आराधिता वशीकुर्यात् पूजाकर्तुश्चराचरम् ॥ ६ ॥ सर्वदेवशरीरेभ्यो

धनुष और रुधिर टपकता हुआ सिर धारण करती हैं ॥ ५ ॥ वह दुरत्यया महाकाली विष्णु की माया हैं, जिसकी आराधना करने से चराचर जगत् वश में हो जाता है ॥ ६ ॥

जो सम्पूर्ण देवताओं के शरीर से उत्पन्न हुई हैं वह अतुल कान्तिवाली महिषमर्दिनी त्रिगुणा साक्षात् महालक्ष्मी हैं ।। ७ ।। उसका मुख श्वेत, भुजाएँ नीली, स्तनमंडल श्वेत, कटि और चरण लाल, जाँघें नीली हैं । वह उत्कट मदवाली हैं ।। ८ ।। उसका जघन विचित्र

याऽऽविर्भूतामितप्रभा । त्रिगुणा सा महालक्ष्मीः साक्षान्महिषमर्दिनी ॥ ७ ॥ श्वेतानना नीलभुजा सुश्वेतस्तनमण्डला । रक्तमध्या रक्तपादा नीलजङ्घोरुरुन्मदा ॥ ८ ॥ सुचित्रजघना चित्रमाल्याम्बरविभूषणा । चित्रानुलेपना कान्तिरूपसौभाग्यशालिनी ॥ ९ ॥ अष्टादशभुजा पूज्या सा सहस्रभुजा सती ।

है और वह चित्र-विचित्र माला, वस्त्र और आभूषण धारण करती हैं । वह विचित्र लेपन करती हैं। वह रूप-लावण्यवती और सौभाग्यवती हैं।।९।। वह पूज्य देवी अठारह भुजावाली

और सहस्त्र भुजावाली हैं। अब क्रम से उनके दाहिने और बाएँ हाथों के आयुध कहते हैं ॥ १० ॥ उसके हाथों में अक्षमाला, कमल, बाण, तलवार, बज्र, गदा, चक्र, त्रिशूल, फरसा, शंख, घंटा, फाँसी, शक्ति, दंड, ढाल, धनुष, पानपात्र और कमंडलु शोभित है।

आयुधान्यत्र वक्ष्यन्ते दक्षिणाधःकरक्रमात् ॥ १० ॥ अक्षमाला च
कमलं बाणोऽसिः कुलिशं गदा । चक्रं त्रिशूलं परशुः शङ्खो घण्टा
च पाशकः ॥ ११ ॥ शक्तिर्दण्डश्चर्म चापं पानपात्रं कमण्डलुः ।
अलंकृतभुजामेभिरायुधैः कमलासनाम् ॥ १२ ॥ सर्वदेवमयीमीशां
महालक्ष्मीमिमां नृप । पूजयेत्सर्वलोकानां स देवानां प्रभुर्भवेत् ॥ १३ ॥

वह कमल-पर बैठी हैं ॥ ११-१२ ॥ हे राजन्, जो मनुष्य इस सर्वदेवमयी ईश्वरी महालक्ष्मी की पूजा करता है वह सब मनुष्यों और देवताओं का स्वामी होता है ॥ १३ ॥

हे नृप, जो गौरी के देह से उत्पन्न हुई हैं और केवल सत्त्वगुण प्रधान हैं वह शुम्भासुर को मारनेवाली साक्षात् सरस्वती हैं ।। १४ ।। सरस्वती की आठ भुजाएँ हैं और वह बाण, मुसल, शूल, चक्र, शंख, घंटा, हल तथा धनुष धारण करती है ।। १५ ।।

गौरीदेहात्समुद्भूता या सत्त्वैकगुणाश्रया । साक्षात्सरस्वती प्रोक्ता शुम्भासुरनिबर्हिणी ॥ १४ ॥ दधौ चाष्टभुजा बाणमुसले शूल-चक्रभृत् । शङ्खं घण्टां लाङ्गलं च कार्मुकं वसुधाधिप ॥ १५ ॥ एषा सम्पूजिता भक्त्या सर्वज्ञत्वं प्रयच्छति । निशुम्भमथिनी देवी शुम्भासुरनिबर्हिणी ॥ १६ ॥ इत्युक्तानि स्वरूपाणि मूर्तीनां तव

जो मनुष्य शुम्भ-निशुम्भनाशिनी सरस्वती का भक्तिपूर्वक पूजन करते हैं वे सर्वज्ञ हो जाते हैं ।। १६ ।। हे राजन्, मूर्तियों के यह स्वरूप तुमसे कहे । अब जगन्माताओं की

अलग-अलग उपासना सुनो ॥ १७ ॥ जब महालक्ष्मी का पूजन करे तब दाहिनी और बाईं ओर क्रम से महाकाली और महासरस्वती का पूजन करना चाहिए और उनके पीछे और देवियों सहित तीनों देवताओं का पूजन करें ॥ १८ ॥ मध्य में सरस्वती के

पार्थिव । उपासनं जगन्मातुः पृथगासां निशामय ॥ १७ ॥ महालक्ष्मीर्यदा पूज्या महाकाली सरस्वती । दक्षिणोत्तरयोः पूज्ये पृष्ठतो मिथुनत्रयम् ॥ १८ ॥ विरञ्चिः स्वरया मध्ये रुद्रो गौर्या च दक्षिणे । वामे लक्ष्म्या हृषीकेशः पुरतो देवतात्रयम् ॥ १९ ॥ अष्टा-दशभुजा मध्ये वामे चास्या दशानना । दक्षिणेऽष्टभुजा लक्ष्मीर्म-

साथ ब्रह्मा का, दक्षिण में गौरी के साथ रुद्र का और उत्तर में लक्ष्मी के साथ हृषीकेश का पूजन करे और इनके सामने आगे कही हुई तीन देवियों की पूजा करें ॥ १९ ॥ मध्य में अर्थात् महालक्ष्मी के सामने अष्टादशभुजी लक्ष्मी का और उनके वामभाग

में अर्थात् महाकाली के सामने दशमुखी महाकाली का और दक्षिणभाग में महासरस्वती का, इस प्रकार महालक्ष्मी का पूजन करना चाहिए ॥ २० ॥ हे राजन्, यदि केवल अष्टादशभुजी का अथवा दशानना का अथवा अष्टभुजी का पूजन करना हो तो सम्पूर्ण

हतीति समर्चयेत् ॥ २० ॥ अष्टादशभुजा चैषा यदा पूज्या नराधिप । दशानना चाष्टभुजा दक्षिणोत्तरयोस्तदा ॥ २१ ॥ कालमृत्यू च सम्पूज्यौ सर्वारिष्टप्रशान्तये । यदा चाष्टभुजा पूज्या शुम्भासुरनिबर्हिणी ॥ २२ ॥ नवास्याः शक्तयः पूज्यास्तदा रुद्रविनायकौ । नमो देव्या इति स्तोत्रैर्महालक्ष्मीं समर्चयेत् ॥ २३ ॥ अवतारत्रयार्चायां स्तोत्रमन्त्रा-

अरिष्ट की शान्ति के लिए दक्षिण और उत्तर की ओर काल और मृत्यु का पूजन करे। जब आठ भुजावाली शुंभासुरमर्दिनी का पूजन करना हो तो इसकी नव शक्तियों का तथा रुद्र और गणेश का भी पूजन करे 'नमो देव्यै' इस स्तोत्र से महालक्ष्मी की स्तुति करे ॥ २१-२३ ॥ देवी के तीनों अवतारों के पूजन में उन्हीं अवतारों के चरित्र के

स्तोत्र से स्तुति करे। यह अष्टादशभुजावाली देवी पूजनीय हैं। यही महिषमर्दिनी महालक्ष्मी, महाकाली और महासरस्वती हैं। यही पुण्य-पापों की ईश्वरी और सम्पूर्ण लोकों की महेश्वरी है ॥ २४-२५ ॥ जो पुरुष महिषासुरमर्दिनी का पूजन करता है वह

स्तदाश्रयाः। अष्टादशभुजा चैषा पूज्या महिषमर्दिनी ॥ २४ ॥ महालक्ष्मीर्महाकाली सैव प्रोक्ता सरस्वती। ईश्वरी पुण्यपापानां सर्वलोकमहेश्वरी ॥ २५ ॥ महिषान्तकरी येन पूजिता स जगत्प्रभुः। पूजयेज्जगतां धात्रीं चण्डिकां भक्तवत्सलाम् ॥२६॥ अर्घ्यादिभिरलंकारैर्गन्धपुष्पैस्तथाक्षतैः। धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्नानाभक्ष्यसमन्वितैः ॥२७॥

जगत् का स्वामी होता है। तीनों लोकों को धारण करनेवाली तथा भक्तों से प्रीति करनेवाली चण्डिका का अर्घ्य, आभूषण, गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य और अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थों से पूजन करना चाहिए ॥ २६-२७ ॥ रुधिर मिले हुए

मांस की बलि से तथा मदिरा से पूजा करनी चाहिए। राजन्! ब्राह्मणों के लिये बलि, मांस-मदिरा से पूजा वर्जित है अर्थात् इतर लोग जो मांस मदिरा का सेवन करते हैं, उसी के लिए विधान है अन्य लोगों के लिए नहीं। प्रणाम, आचमनीय, चन्दन, सुगन्ध, कर्पूर और ताम्बूल से भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिए। देवी के आगे वाम भाग

रुधिराक्तेन बलिना मांसेन सुरया नृप। (बलिमांसादिपूजेयं विप्रवर्ज्या मयेरिता॥ तेषां किल सुरामांसैर्नोक्ता पूजा नृप क्वचित्।) प्रणामाचमनीयेन चन्दनेन सुगन्धिना॥ २८॥ सकर्पूरैश्च ताम्बूलैर्भक्तिभावसमन्वितैः। वामभागेऽग्रतो देव्याश्छिन्नशीर्षं महासुरम्॥ २९॥ पूजयेन्महिषं येन प्राप्तं सायुज्यमीशया।

में कटे हुए सिरवाले ईश्वरी द्वारा मोक्ष को प्राप्त महासुर महिष का पूजन करे। दक्षिण की ओर अग्रभाग में समग्र धर्मरूप ईश्वर चराचर को धारण करनेवाले देवी के वाहन सिंह की पूजा करे और बुद्धिमान् पुरुष एकाग्रचित्त होकर, हाथ जोड़कर इन चरित्रों

से स्तुति करे। यदि समय न मिले तो केवल मध्य चरित्र से ही स्तुति करे, किन्तु केवल प्रथम या उत्तम चरित्र का पाठ न करे। आधे चरित्र का भी पाठ न करना चाहिए, ऐसा करने से निस्संदेह विघ्न होता है। स्तोत्र और मंत्रों में जगदम्बिका

दक्षिणे पुरतः सिंहं समग्रं धर्ममीश्वरम् ॥ ३० ॥ वाहनं पूजयेद्देव्या धृतं येन चराचरम्। कुर्याच्च स्तवनं धीमांस्तस्या एकाग्रमानसः ॥ ३१ ॥ ततः कृताञ्जलिर्भूत्वा स्तुवीत चरितैरिमैः। एकेन वा मध्यमेन नैकेनेतरयोरिह ॥ ३२ ॥ चरितार्धं तु न जपेज्जपञ्छिद्रमवाप्नुयात्। प्रदक्षिणानमस्कारान् कृत्वा मूर्ध्नि कृताञ्जलिः ॥ ३३ ॥ क्षमापयेज्जगद्धात्रीं मुहुर्मुहुरतन्द्रितः। प्रतिश्लोकं च जुहुयात्पायसं

की स्तुति करे और प्रदक्षिणा तथा नमस्कार करके हाथ जोड़कर सावधान होकर जगद्धात्री से वारंवार क्षमा माँगे। सप्तशती-स्तोत्र के प्रत्येक मन्त्र अथवा महालक्ष्मी-

स्तोत्र (देव्या यया ततमित्यादि) से तिल, घी और खीर की आहुति दे। फिर सावधान होकर नाम और पदों से देवी का पूजन करे ॥ २८-३५ ॥ उसके बाद एकाग्रचित्त होकर हाथ जोड़कर आत्मा में प्राणों को रोककर नम्रता से बहुत देर तक चण्डिका देवी

तिलसर्पिषा ॥ ३४ ॥ जुहुयात्स्तोत्रमन्त्रैर्वा चण्डिकायै शुभं हविः । भूयो नामपदैर्देवीं पूजयेत्सुसमाहितः ॥ ३५ ॥ प्रयतः प्राञ्जलिः प्रह्वः प्रणम्यारोप्य चात्मनि । सुचिरं भावयेदीशां चण्डिकां तन्मयो भवेत् ॥ ३६ ॥ एवं यः पूजयेद्भक्त्या प्रत्यहं परमेश्वरीम् । भुक्त्वा भोगान् यथाकामं देवीसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ३७ ॥ यो न पूजयते

का ध्यान करे और उन्हीं में तन्मय हो जाय ॥ ३६ ॥ इस प्रकार जो मनुष्य भक्ति-पूर्वक परमेश्वरी का प्रतिदिन पूजन करता है वह अभीष्ट सुख-भोग करके अन्त में देवी के लोक को जाता है ॥ ३७ ॥ जो पुरुष भक्तों पर दया करनेवाली चण्डिका की

प्रतिदिन पूजा नहीं करता, परमेश्वरी उसके पुण्यों को विफल करके उसे जन्मभर दुःख शोक से भस्म करती है ॥ ३८ ॥ इसलिए हे राजन्, तुम सम्पूर्ण लोकों की महेश्वरी

नित्यं चण्डिकां भक्तवत्सलाम् । भस्मीकृत्यास्य पुण्यानि निर्दहे-त्परमेश्वरी ॥ ३८ ॥ तस्मात्पूजय भूपाल सर्वलोकमहेश्वरीम् । यथोक्तेन विधानेन चण्डिकां सुखमाप्स्यसि ॥ ३९ ॥

चण्डिका का कथित विधान से पूजन करो । इसके करने से तुम सुख पावोगे ॥ ३९ ॥

॥ इति वैकृतिकं रहस्यम् समाप्तम् ॥

—:०:—

अथ मूर्तिरहस्यम्

ऋषिरुवाच

ॐ नन्दा भगवती नाम या भविष्यति नन्दजा। स्तुता सा पूजिता भक्त्या वशीकुर्याज्जगत्त्रयम् ॥ १ ॥ कनकोत्तमकान्तिः सा सुकान्तिकनकाम्बरा। देवी कनकवर्णाभा कनकोत्तम-

ऋषि ने कहा—हे राजन्, नन्दा भगवती नामवाली जो नन्द से उत्पन्न होगी, उसकी भक्तिपूर्वक स्तुति और पूजा करने से मनुष्य तीनों लोकों को वश में कर लेता है ॥ १ ॥ वह देवी सुवर्ण के उत्तम आभूषणों से शोभित है, उसकी कान्ति सुवर्ण के समान उत्तम है, उसके वस्त्र सुवर्णसदृश सुन्दर हैं, और वह देवी सुवर्ण के समान दीप्तिमान्

है ।। २ ।। कमल, अंकुश, पाश और शंख से उसकी चारों भुजाएँ शोभित हैं और उसके इन्दिरा, कमला, लक्ष्मी, श्री, रुक्मा और कमलासना ये नाम हैं ।। ३ ।। हे निष्पाप, मैंने रक्तदन्तिका नाम जिस देवी का वर्णन किया है, उसका सम्पूर्ण भयनाशक स्वरूप कहता

भूषणा ॥ २ ॥ कमलाङ्कुशपाशाब्जैरलंकृतचतुर्भुजा । इन्दिरा कमला लक्ष्मीः सा श्री रुक्माम्बुजासना ॥ ३ ॥ या रक्तदन्तिका नाम देवी प्रोक्ता मयानघ । तस्याः स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु सर्वभयापहम् ॥ ४ ॥ रक्ताम्बरा रक्तवर्णा रक्तसर्वाङ्गभूषणा । रक्तायुधा रक्तनेत्रा रक्तकेशातिभीषणा ॥ ५ ॥ रक्ततीक्ष्णनखा रक्तदशना रक्तदन्तिका ।

हूँ, सुनो ।। ४ ।। रक्तवस्त्र, रक्तवर्ण, रक्त ही सब अंगों के आभूषणों से शोभित, रक्तआयुध, रक्तनेत्र, रक्तकेशवाली, अतिभयंकर, रक्त-तीक्ष्ण-नखवाली, रक्तआसन पर स्थित, रक्तदाँतवाली देवी भक्तों के वश में उसी प्रकार रहती है जैसे स्त्री पति के अनुकूल

रहती है। वह देवी पृथ्वी के समान विशाल है और उसके दोनों स्तन सुमेरु पर्वत के समान हैं। वे दोनों स्तन बड़े लम्बे, बड़े मोटे, अत्यन्त मनोहर, कड़े शोभायमान और आनन्द के समुद्ररूप हैं। सब कामनाओं को देनेवाले दोनों स्तनों को देवी अपने भक्त-

पति नारीवानुरक्ता देवी भक्तं भजेज्जनम् ॥ ६ ॥ वसुधेव विशाला सा सुमेरुयुगलस्तनी। दीर्घौ लम्बावतिस्थूलौ तावतीव मनोहरौ ॥ ७ ॥ कर्कशावतिकान्तौ तौ सर्वानन्दपयोनिधी। भक्तान् सम्पाययेद्देवी सर्वकामदुघौ स्तनौ ॥ ८ ॥ खड्गं पात्रं च मुसलं लाङ्गलं च बिभर्ति सा। आख्याता रक्तचामुण्डा देवी योगे-

जनों को पिलाती हैं॥ ५-८॥ देवी की चारों भुजाएँ खड्ग, पात्र, हल और मुसल से शोभित हैं। वह देवी रक्तचामुण्डा और योगेश्वरी नाम से विख्यात हैं और वह स्थावर-जंगमरूप सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त हैं। जो पुरुष भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करता

है, वह चराचर में व्याप्त होता है ॥ ९-१० ॥ यथेष्ठ भोगों को भोगकर अन्त में देवी के साथ सायुज्य को प्राप्त करता है। जो पुरुष रक्तदन्तिका के इस स्तोत्र को पढ़ता है, देवी उसकी ऐसी सेवा करती है, जैसे स्त्री अपने प्रिय पति की ॥ ११ ॥

श्वरीति च ॥ ९ ॥ अनया व्याप्तमखिलं जगत्स्थावरजङ्गमम् । इमां यः पूजयेद्भक्त्या स व्याप्नोति चराचरम् ॥ १० ॥ (भुक्त्वा भोगान् यथाकामं देवीसायुज्यमाप्नुयात् ।) अधीते य इमं नित्यं रक्तदन्त्या वपुःस्तवम् । तं सा परिचरेद्देवी पतिं प्रियमिवाङ्गना ॥ ११ ॥ शाकम्भरी नीलवर्णा नीलोत्पलविलोचना । गम्भीरनाभिस्त्रिवली-विभूषिततनूदरी ॥ १२ ॥ सुकर्कशसमोत्तुङ्गवृत्तपीनघनस्तनी ।

शाकंभरी देवी का नीलवर्ण है, नील कमल के समान उसके नेत्र हैं, गंभीर नाभि है और त्रिबली से भूषित उसका सूक्ष्म उदर है ॥ १२ ॥ कड़े, ऊँचे, गोल, मोटे समान

और मांसल स्तन हैं, उसके हाथ में कमल है, उस पर भौंरे गुंजार रहे हैं और कमल पर ही वह विराजमान है ॥ १३ ॥ पुष्प, पल्लव, मूल और फल से युक्त, अनेक सुन्दर रसोंवाले, क्षुधा, तृष्णा, मृत्यु और वृद्धावस्था को दूर करनेवाले शाकसमूह तथा चमकता

मुष्टिं शिलीमुखापूर्णं कमलं कमलालया ॥ १३ ॥ पुष्पपल्लवमूला-दिफलाढ्यं शाकसञ्चयम् । काम्यानन्तरसैर्युक्तं क्षुतृण्मृत्युभया-पहम् ॥ १४ ॥ कार्मुकं च स्फुरत्कान्ति बिभ्रती परमेश्वरी । शाकम्भरी शताक्षी सा सैव दुर्गा प्रकीर्तिता ॥ १५ ॥ विशोका दुष्टदमनी शमनी दुरितापदाम् । उमा गौरी सती चण्डी कालिका

हुआ धनुष धारण करती हैं । वह परमेश्वरी शाकंभरी शताक्षी हैं और वही दुर्गा कही गई हैं ॥ १४-१५ ॥ वही विशोका, दुष्टदमनी, उमा, गौरी, सती, चण्डी, कालिका

और विपत्तियों का विनाश करनेवाली पार्वती हैं ॥ १६ ॥ जो मनुष्य शाकंभरी का ध्यान, जप, पूजन, उनकी स्तुति और उनको नमस्कार करता है, वह शीघ्र ही अन्न, पान, अमृत और फल पाता है ॥ १७ ॥ भीमादेवी भी नीलवर्ण हैं, उनकी दाढ़ें और दाँत

सा च पार्वती ॥ १६ ॥ शाकम्भरीं स्तुवन् ध्यायञ्जपन् सम्पूजयन्नमन् । अक्षय्यमश्नुते शीघ्रमन्नपानामृतं फलम् ॥ १७ ॥ भीमापि नीलवर्णा सा दंष्ट्रादशनभासुरा । विशाललोचना नारी वृत्तपीनपयोधरा ॥ १८ ॥ चन्द्रहासं च डमरुं शिरः पात्रं च बिभ्रती । एकवीरा कालरात्रिः सैवोक्ता कामदा स्तुता ॥ १९ ॥ तेजोमण्डल-

बड़े सुन्दर हैं, उनके नेत्र विशाल हैं, गोल और स्थूल कुच हैं ॥ १८ ॥ वह डमरू, कपाल और ढाल, तलवार धारण किये हैं । वह एकवीरा, कालरात्रि, कामदा, तेजो-

दुर्धर्षा भ्रामरी चित्रकान्तिभृत् । चित्रानुलेपना देवी चित्राभरण-
भूषिता ॥ २० ॥ चित्रभ्रमरपाणिः सा महामारीति गीयते । इत्येता
मूर्तयो देव्या याः ख्याता वसुधाधिप ॥ २१ ॥ जगन्मातुश्चण्डि-
कायाः कीर्तिताः कामधेनवः । इदं रहस्यं परमं न वाच्यं कस्य-
चित्त्वया ॥ २२ ॥ व्याख्यानं दिव्यमूर्तीनामभीष्टफलदायकम् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन देवीं जप निरन्तरम् ॥ २३ ॥ सप्तजन्मार्जि-

मण्डलदुर्दर्शा, भ्रामरी, चित्रकांतिभृत्, चित्रानुलेपना, चित्राभरणभूषिता, चित्रभ्रमर-पाणि और महामारी इन नामों से प्रसिद्ध हैं। हे नृप, ये देवी की मूर्तियाँ शास्त्र वर्णित हैं ॥ १९-२१ ॥ ये मूर्तियाँ जगन्माता चण्डिका की कामधेनु कहलाती हैं। हे राजन्, यह चरित्र परम गुप्त है। इसको किसी से कहना नहीं चाहिए ॥ २२ ॥ हे राजन्, इन दिव्य मूर्तियों का अभीष्ट फल देनेवाला चरित्र बड़े यत्न से निरन्तर पढ़ो।

इन मन्त्रों के पढ़ने से ब्रह्महत्या के समान घोर सात जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं। हे राजन्, मैंने अत्यन्त गुप्त देवी का ध्यान तुमसे कहा। विधिपूर्वक यह ध्यान करने

तैर्घोरैर्ब्रह्महत्यासमैरपि। पाठमात्रेण मन्त्राणां मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ २४ ॥ देव्या ध्यानं मया ख्यातं गुह्याद् गुह्यतरं महत्। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सर्वकामफलप्रदम् ॥ २५ ॥ (एतस्यास्त्वं प्रसादेन सर्वमान्यो भविष्यसि। सर्वरूपमयी देवी सर्वं देवीमयं जगत ॥ अतोऽहं विश्वरूपां तां नमामि परमेश्वरीम् ॥)

से अभीष्ट फल मिलता है ॥२३-२५॥ भगवती के प्रसाद से तुम सर्वमान्य बन जाओगे। देवी सर्वरूपमयी है और सारा जगत देवीमय है। अतः मैं उस जगत् व्यापिनी परमेश्वरी को प्रणाम करता हूँ।

॥ इति मूर्तिरहस्यं समाप्तम् ॥

—:•:—

सिद्धकुञ्जिकास्तोत्रम्

शिव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कुञ्जिकास्तोत्रमुत्तमम् । येन मन्त्रप्रभावेण चण्डीजापः शुभो भवेत् ॥ १ ॥ न कवचं नार्गलास्तोत्रं कीलकं न रहस्यकम् । न सूक्तं नापि ध्यानं च न न्यासो न च वार्चनम् ॥ २ ॥ कुञ्जिकापाठमात्रेण दुर्गापाठफलं लभेत् । अति गुह्यतरं देवि देवानामपि दुर्लभम् ॥ ३ ॥ गोपनीयं प्रयत्नेन स्वयोनिरिव पार्वति । मारणं मोहनं वश्यं स्तम्भनोच्चाटनादिकम् । पाठमात्रेण संसिद्ध्येत् कुञ्जिकास्तोत्र-मुत्तमम् ॥ ४ ॥

अथ मन्त्रः

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ॥ ॐ ग्लौं हुं क्लीं जूं सः ज्वालय

ज्वालय ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ज्वल हं सं लं क्षं फट् स्वाहा ॥

॥ इति मन्त्र ॥

नमस्ते रुद्ररूपिण्यै नमस्ते मधुमर्दिनि । नमः कैटभहारिण्यै नमस्ते महिषार्दिनि ॥ १ ॥ नमस्ते शुम्भहन्त्र्यै च निशुम्भासुरघातिनि ॥ २ ॥ जाग्रतं हि महादेवि जपं सिद्धं कुरुष्व मे । ऐंकारी सृष्टिरूपायै ह्रींकारी प्रतिपालिका ॥ ३ ॥ क्लींकारी कामरूपिण्यै बीजरूपे नमोऽस्तु ते । चामुण्डा चण्डघाती च यैकारी वरदायिनी ॥ ४ ॥ विच्चे चाभयदा नित्यं नमस्ते मन्त्ररूपिणि ॥ ५ ॥ धां धीं धूं धूर्जटेः पत्नी वां वीं वूं वागधी-श्वरी । क्रां क्रीं क्रूं कालिका देवि शां शीं शूं मे शुभं कुरु ॥ ६ ॥ हुं हुं हुंकाररूपिण्यै जं जं जं जम्भनादिनी । भ्रां भ्रीं भ्रूं भैरवी भद्रे भवान्यै ते

नमो नमः ॥ ७ ॥ अं कं चं टं तं पं यं शं वीं दुं ऐं वीं हं क्षं । धिजाग्रं धिजाग्रं त्रोटय त्रोटय दीप्तं कुरु कुरु स्वाहा ॥ पां पीं पूं पार्वती पूर्णा खां खीं खूं खेचरी तथा ॥ ८ ॥ सां सीं सूं सप्तशतीदेव्या मन्त्रसिद्धिं कुरुष्व मे ॥ इदं तु कुञ्जिकास्तोत्रं मन्त्रजागर्तिहेतवे । अभक्ते नैव दातव्यं गोपितं रक्ष पार्वति ॥ यस्तु कुञ्जिकया देवि हीनां सप्तशतीं पठेत् । न तस्य जायते सिद्धिररण्ये रोदनं यथा ॥

इति श्रीरुद्रयामले गौरीतन्त्रे शिवपार्वतीसंवादे कुञ्जिकास्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

॥ ॐ तत्सत् ॥

—:०:—

क्षमा-प्रार्थना

आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम्। पूजां चैव न जानामि क्षम्यतां परमेश्वरि ॥ १ ॥ मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वरि। यत्पूजितं मया देवि परिपूर्णं तदस्तु मे ॥ २ ॥ गतं पापं गतं दुःखं गतं दारिद्र्यमेव च। आगता सुखसम्पत्तिः पुण्याच्च तव दर्शनात् ॥ ३ ॥ यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीनं च यद् भवेत्। तत्सर्वं क्षम्यतां देवि ! प्रसीद परमेश्वरि ॥ ४ ॥ पापोऽहं पापकर्माहं पापात्मा पापसंभवः। त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष सर्वपापहरो हरिः ॥ ५ ॥ अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम। तस्मात् कारुण्यभावेन रक्ष मां परमेश्वरि ॥ ६ ॥ रूपं देहि जयं देहि भाग्यं देहि महेश्वरि। पुत्रान्देहि धनं देहि सर्वान्

कामांश्च देहि मे ॥ ७ ॥ त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव । त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव-देव ॥८॥ सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः । सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत् ॥ ९ ॥ ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्ण मुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥ १० ॥

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्ति !!

—:०:—

अथ देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम्

न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुतिकथाः । न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने

विलपनं परं जाने मातस्त्वदनुसरणं क्लेशहरणम् ॥ १ ॥ विधेरज्ञानेन द्रविणविरहेणालसतया विधेयाशक्यत्वात्तव चरणयोर्या च्युतिरभूत्। तदेतत् क्षन्तव्यं जननि सकलोद्धारिणि शिवे कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥ २ ॥ पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहवः सन्ति सरलाः परं तेषां मध्ये विरलतरलोऽहं तव सुतः। मदीयोऽयं त्यागः समुचितमिदं नो तव शिवे कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥ ३ ॥ जगन्मातर्मातस्तव चरणसेवा न रचिता न वा दत्तं देवि द्रविणमपि भूयस्तव मया। तथापि त्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत्प्रकुरुषे कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥ ४ ॥ परित्यक्ता देवा विविधविधसेवाकुलतया मया पञ्चाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि। इदानीं चेन्मातस्तव यदि कृपा नापि भविता निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम् ॥ ५ ॥ श्वपाको

जल्पाको भवति मधुपाकोपमगिरा निरातङ्को रङ्को विहरति चिरं कोटि-
कनकैः । तवापर्णे कर्णे विशति मनुवर्णे फलमिदं जनः को जानीते
जननि जपनीयं जपविधौ ॥ ६ ॥ चिताभस्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो
जटाधारी कण्ठे भुजगपतिहारी पशुपतिः । कपाली भूतेशो भजति
जगदीशैकपदवीं भवानि त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदम् ॥ ७ ॥ न
मोक्षस्याकाङ्क्षा भवविभववाञ्छापि च न मे न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि
सुखेच्छापि न पुनः । अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै मृडानी
रुद्राणी शिव शिव भवानीति जपतः ॥ ८ ॥ नाराधितासि विधिना
विविधोपचारैः किं रूक्षचिन्तनपरैर्न कृतं वचोभिः । श्यामे त्वमेव यदि
किञ्चन मय्यनाथे धत्से कृपामुचितमम्ब परं तवैव ॥ ९ ॥ आपत्सु मग्नः
स्मरणं त्वदीयं करोमि दुर्गे करुणार्णवेशि । नैतच्छठत्वं मम भावयेथाः

क्षुधातृषार्ता जननीं स्मरन्ति ॥ १० ॥ जगदम्ब विचित्रमत्र किं परिपूर्णा करुणास्ति चेन्मयि । अपराधपरम्परापरं न हि माता समुपेक्षते सुतम् ॥११॥ मत्समः पातकी नास्ति पापघ्नी त्वत्समा न हि । एवं ज्ञात्वा महादेवि यथायोग्यं तथा कुरु ॥ १२ ॥

इति श्रीशङ्कराचार्यविरचितं देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

महिषासुरमर्दिनि स्तोत्रम्

श्री संकष्टनाशिन्यै नमः

सदावृन्दारकोद्वृन्दानन्दसन्दोहदायकम् । अमन्दमंगलागारं वन्दे शंकरनन्दनम् ॥ १ ॥ किङ्कार्यं कठिनं कुतः परिभवः कुत्रापवादाद्भयम् किं मित्रन्नहि किन्नु राजसदनं गम्यन्न विद्या च का । किं वाऽन्यज्जगतीतले प्रवद यत्तेषामसम्भावितम् । येषां हृत्कमले सदा वसति सा तोषप्रदा संकटा ॥ २ ॥

श्री महालक्ष्म्यै नमः

अयि गिरिनन्दिनि नन्दितमेदिनि विश्वविनोदिनि नन्दिनुते । गिरिवरविन्ध्यशिरोधिनिवासिनि विष्णुविलासिनि जिष्णुनुते ॥ भगवति

हे शितिकण्ठकुटुम्बिनि भूरिकुटुम्बिनि भूतिकृते । जय जय हे महिषा-
सुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥ १ ॥ सुरवरवर्षिणि दुर्धरधर्षिणि
दुर्मुखमर्षिणि हर्षरते । त्रिभुवनपोषिणि शंकरतोषिणि कल्मषमोषिणि
घोषरते ॥ दनुजनिरोषिणि दुर्मदशोषिणि दुर्मुनिरोषिणि सिन्धुसुते । जय
जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥ २ ॥ अयि जगदम्ब
कदम्बवनप्रियवासिनि तोषिणि हासरते । शिखरिशिरोमणितुंगहिमालय-
शृङ्गनिजालयमध्यगते ॥ मधुमधुरे मधुकैटभगञ्जिनि महिषविदारिणि
रासरते । जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥ ३ ॥
अयि निजहुंकृतिमात्रनिराकृतधूम्रविलोचनधूम्रशते । समरविशोषित-
शोषितशोणितबीजसमुद्भवबीजलते ॥ शिव-शिव-शुम्भनिशुम्भमहाहव-

तर्पितभूतपिशाचरते । जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैल-
सुते ॥ ४ ॥ अयि शतखण्डविखण्डितरुण्डवितुण्डितशुण्डगजाधिपते ।
निजभुजदण्डनिपातित-चण्डविपाटितमुण्डभटाधिपते । रिपुगजगण्ड-
विदारण-चण्डपराक्रम-शौण्डमृगाधिपते । जय जय हे महिषासुरमर्दिनि
रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥ ५ ॥ धनुरनुषङ्गरणक्षणसंगपरिस्फुरदंगनटत्कटके ।
कनकपिशंगपृषत्कनिषंगरसद्भटशृङ्गहताबटुके ॥ हतचतुरंगबल-क्षितिरं-
गघटद्-बहुरंगरटद्-बटुके । जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि
शैलसुते ॥ ६ ॥ अयि रणदुर्मदशत्रुवधोद्धुरदुर्धरनिर्भरशक्तिभृते । चतुर-
विचारधुरीण-महाशयदूतकृत-प्रमथाधिपते ॥ दुरित-दुरीह-दुराशय-दुर्मति-
दानवदूत-दुरन्तगते । जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि

शैलसुते ॥ ७ ॥ अयि शरणागतवैरिवधूजनवीरवराभयदायिकरे । त्रिभुवन-
मस्तकशूलविरोधिशिरोधिकृतामलशूलकरे ॥ दुमिदुमितामरदुन्दुभिनाद-
मुहुर्मुखरीकृतदिङ्निकरे । जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि
शैलसुते ॥ ८ ॥ सुरललना-ततथेयित-थेयितथाभिनयोत्तर-नृत्यरते ।
कृतकुकुथाकुकुथोदिडदाडिक-तालकुतूहल-गानरते ॥ धुधुकुटधूधुटधिन्धि-
मितध्वनि-धीरमृदंगनिनादरते । जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि
शैलसुते ॥ ९ ॥ जय जय जाप्यजये जयशब्दपरस्तुतितत्पर-विश्वनुते ।
झणझण-झिंझिमझिंकृत-नूपुरशिञ्जित-मोहित-भूतपते ॥ नटितनटार्ध-
नटीनटनायक-नाटननाटित-नाट्यरते । जय जय हे महिषासुरमर्दिनि
रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥ १० ॥ अयि सुमनः-सुमनः-सुमनः-सुमनः

सुमनोरमकान्तियुते। श्रितरजनी-रजनी-रजनी-रजनीरजनीकर-वक्त्रभृते ॥ सुनयन-विभ्रमर-भ्रमर-भ्रमर-भ्रमर भ्रमराभिद्दते। जय जय हे महिषासुर-मर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥ ११ ॥ महित-महाहवमल्लमतल्लिक-वल्लितरल्लितभल्लिरते । विरचितवल्लिकपालिकपल्लिकझिल्लिक भिल्लिक-वर्गवृते ॥ श्रुतकृतफुल्लसमुल्लसितारुण-तल्लजपल्लव-सल्ललिते । जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥ १२ ॥ अयि सुदतीजन-लालसमानसमोहनमन्मथराजसुते । अविरल-गण्डगलन्-मतमेदुर-मत्त-मतङ्गजराजगते ॥ त्रिभुवन-भूषणभूत-कलानिधिरूप-पयोनिधिराजसुते । जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥ १३ ॥ कमल-दलामलकोमलकान्ति-कलाकलितामल-भालतले । सकल-बिलासकला-

निलय-क्रमकेलिचलत्कल-हंसकुले ॥ अलिकुलसंकुल-कुन्तलमण्डल-मौलि-
मिलद्-बकुलालिकुले । जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि
शैलसुते ॥ १४ ॥ करमुरलीरव-वर्जित-कूजितलज्जित-कोकिलमञ्जुमते ।
मिलितमिलिन्द-मनोहरगुञ्जित-रञ्जित-शैलनिकुञ्जगते ॥ निजगण-
भूतमहाशबरीगण-रङ्गणसंभृत-केलिरते । जय जय हे महिषासुरमर्दिनि
रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥ १५ ॥ कटितटपीतदुकूलविचित्रमयूखतिरस्कृत-
चण्डरुचे । जितकनकाचलमौलिमदोर्जितगर्जितकुञ्जरकुम्भकुचे ॥ प्रणत-
सुरासुर-मौलिमणि-स्फुरदंशुलसन्नखचन्द्ररुचे । जय जय हे महिषासुर-
मर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥ १६ ॥ विजितसहस्रकरैक-सहस्रकरैक-
सहस्रकरैकनुते । कृतसुरतारक-सङ्गरतारक-सङ्गरतारक सूनुनुते ॥ सुरथ-

समाधिसमानसमाधिसमानसमाधिसुजाप्यरते । जय जय हे महिषासुर-
मर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥ १७ ॥ पदकमलं करुणानिलये
वरिवस्यति योऽनुदिनं सुशिवे । अयि कमले कमलानिलये कमलानिलयः
स कथं न भवेत् ॥ तव पदमेव परं पदमस्त्विति शीलयतो मम किं न
शिवे । जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥ १८ ॥
कनकलसत्कलशीकजलैरनुषिञ्चति तेऽङ्गणरङ्गभुवम् । भजति स किं न
शचीकुचकुम्भनटीपरिरम्भसुखानुभवम् ॥ तव चरणं शरणं करवाणि
सुवाणि पथं मम देहि शिवम् । जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यक-
पर्दिनि शैलसुते ॥ १९ ॥ तव विमलेन्दुकलं वदनेन्दुमलं कलयन्ननु-
कूलयते । किमु पुरुहूतपुरीन्दुमुखीभिरसौ विमुखी क्रियते ॥ मम तु मतं

शिवमानधने भवती कृपया किमु न क्रियते । जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥ २० ॥ अयि मयि दीनदयालुतया कृपयैव त्वया भवितव्यमुमे । अयि जगतो जननीति यथाऽसि मयाऽपि तथाऽनुमताऽसिरमे ॥ यदुचितमत्र भवत्पुरगं कुरु शाम्भवि देवि दयां कुरु मे । जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥ २१ ॥ स्तुतिमिमां स्तिमितः सुसमाधिना नियमतो यमतोऽनुदिनं पठेत् । परमया रमया स निषेव्यते परिजनोऽरिजनोऽपि च तं भजेत् ॥

॥ श्री सङ्कष्टनाशिन्यै समर्पितमस्तु ॥

—:०:—

।। श्रीदुर्गायै नमः ।।

श्रीदुर्गाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

ईश्वर उवाच

शतनाम प्रवक्ष्यामि शृणुष्व कमलानने । यस्य प्रसादमात्रेण दुर्गा प्रीता भवेत् सती ॥ १ ॥ ॐ सती साध्वी भवप्रीता भवानी भवमोचनी । आर्या दुर्गा जया चाद्या त्रिनेत्रा शूलधारिणी ॥ २ ॥ पिनाकधारिणी चित्रा चण्डघण्टा महातपाः । मनो बुद्धिरहंकारा चित्तरूपा चिता चितिः ॥ ३ ॥ सर्वमन्त्रमयी सत्ता सत्यानन्दस्वरूपिणी । अनन्ता भाविनी भाव्या भव्याभव्या सदागतिः ॥ ४ ॥ शाम्भवी देवमाता च

चिन्ता रत्नप्रिया सदा । सर्वविद्या दक्षकन्या दक्षयज्ञविनाशिनी ॥ ५ ॥ अपर्णानेकवर्णा च पाटला पाटलावती । पट्टाम्बरपरीधाना कलमञ्जीर-रञ्जिनी ॥ ६ ॥ अमेयविक्रमा क्रूरा सुन्दरी सुरसुन्दरी । वनदुर्गा च मातङ्गी मतङ्गमुनिपूजिता ॥ ७ ॥ ब्राह्मी माहेश्वरी चैन्द्री कौमारी वैष्णवी तथा । चामुण्डा चैव वाराही लक्ष्मीश्च पुरुषाकृतिः ॥ ८ ॥ विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया नित्या च बुद्धिदा । बहुला बहुलप्रेमा सर्ववाहनवाहना ॥ ९ ॥ निशुम्भशुम्भहननी महिषासुरमर्दिनी । मधुकैटभहन्त्री च चण्डमुण्ड-विनाशिनी ॥ १० ॥ सर्वासुरविनाशा च सर्वदानवघातिनी । सर्वशास्त्रमयी सत्या सर्वास्त्रधारिणी तथा ॥ ११ ॥ अनेकशस्त्रहस्ता च अनेकास्त्रस्य धारिणी । कुमारी चैककन्या च कैशोरी युवती यतिः ॥ १२ ॥ अप्रौढा

चैव प्रौढा च वृद्धमाता बलप्रदा । महोदरी मुक्तकेशी घोररूपा महाबला ॥ १३ ॥ अग्निज्वाला रौद्रमुखी कालरात्रिस्तपस्विनी । नारायणी भद्रकाली विष्णुमाया जलोदरी ॥ १४ ॥ शिवदूती कराली च अनन्ता परमेश्वरी । कात्यायनी च सावित्री प्रत्यक्षा ब्रह्मवादिनी ॥ १५ ॥ य इदं प्रपठेन्नित्यं दुर्गानामशताष्टकम् । नासाध्यं विद्यते देवि त्रिषु लोकेषु पार्वति ॥ १६ ॥ धनं धान्यं सुतं जायां हयं हस्तिनमेव च । चतुर्वर्गं तथा चान्ते लभेन्मुक्तिं च शाश्वतीम् ॥ १७ ॥ कुमारीं पूजयित्वा तु ध्यात्वा देवीं सुरेश्वरीम् । पूजयेत् परया भक्त्या पठेन्नामशताष्टकम् ॥ १८ ॥ तस्य सिद्धिर्भवेद् देवि सर्वैः सुरवरैरपि । राजानो दासतां यान्ति राज्यश्रियमवाप्नुयात् ॥ १९ ॥ गोरोचनालक्तककुङ्कुमेन सिन्दूर-

कर्पूरमधुत्रयेण । विलिख्य यन्त्रं विधिना विधिज्ञो भवेत् सदा धारयते पुरारिः ॥ २० ॥ भौमावास्यानिशामग्रे चन्द्रे शतभिषां गते । विलिख्य प्रपठेत् स्तोत्रं स भवेत् संपदां पदम् ॥ २१ ॥

इति श्रीविश्वसारतन्त्रे दुर्गाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं समाप्तम् ।

—: ० :—

श्रीदुर्गामानस-पूजा

उद्यच्चन्दनकुङ्कुमारुणपयोधाराभिराप्लावितां नानानर्घ्यमणिप्रवाल-घटितां दत्तां गृहाणाम्बिके। आमृष्टां सुरसुन्दरीभिरभितो हस्ताम्बुजैर्भक्तितो मातः सुन्दरि भक्तकल्पलतिके श्रीपादुकामादरात् ॥ १ ॥ देवेन्द्रादिभिरर्चितं सुरगणैरादाय सिंहासनं चञ्चत्काञ्चनसंचयाभिरचितं चारुप्रभाभास्वरम्। एतच्चम्पककेतकीपरिमलं तैलं महानिर्मलं गन्धोद्वर्तनमादरेण तरुणीदत्तं गृहाणाम्बिके ॥ २ ॥ पश्चाद्देवि गृहाण शम्भुगृहिणि श्रीसुन्दरि प्रायशो गन्धद्रव्यसमूहनिर्भरतरं धात्रीफलं निर्मलम्। तत्केशान् परिशोध्य कङ्कतिकया मन्दाकिनीस्रोतसि स्नात्वा प्रोज्ज्वलगन्धकं भवतु हे श्रीसुन्दरि त्वन्मुदे ॥ ३ ॥ सुराधिपतिकामिनीकरसरोजनालीधृतां

सचन्दनसकुङ्कुमागुरुभरेण विभ्राजिताम् । महापरिमलोज्ज्वलां सरसशुद्धकस्तूरिकां गृहाण वरदायिनि त्रिपुरसुन्दरि श्रीप्रदे ॥ ४ ॥ गन्धर्वामरकिन्नरप्रियतमासन्तानहस्ताम्बुजप्रस्तारैर्ध्रियमाणमुत्तमतरं काश्मीरजापिञ्जरम् । मातर्भास्वरभानुमण्डललसत्कान्तिप्रदानोज्ज्वलं चैतन्निर्मलमातनोतु वसनं श्रीसुन्दरि त्वन्मुदम् ॥ ५ ॥ स्वर्णाकल्पितकुण्डले श्रुतियुगे हस्ताम्बुजे मुद्रिका मध्ये सारसना नितम्बफलके मञ्जीरमङ्घ्रिद्वये । हारो वक्षसि कङ्कणौ क्वणरणत्कारौ करद्वन्द्वके विन्यस्तं मुकुटं शिरस्यनुदिनं दत्तोन्मदं स्तूयताम् ॥ ६ ॥ ग्रीवायां धृतकान्तिकान्तपटलं ग्रैवेयकं सुन्दरं सिन्दूरं विलसल्ललाटफलके सौन्दर्यमुद्राधरम् । राजत्कज्जलमुज्ज्वलोत्पददलश्रीमोचने लोचने तद्दिव्यौषधिनिर्मितं रचयतु

श्रीशाम्भवि श्रीपदे ॥ ७ ॥ अमन्दतरमन्दरोन्मथितदुग्धसिन्धूद्भवं निशाकरकरोपमं त्रिपुरसुन्दरि श्रीपदे। गृहाण मुखमीक्षितुं मुकुरबिम्बमाविद्रुमैर्विनिर्मितमघच्छिदे रतिकराम्बुजस्थायिनम् ॥ ८ ॥ कस्तूरीद्रवचन्दनागुरुसुधाधाराभिराप्लावितं चञ्चच्चम्पकपाटलादिसुरभिद्रव्यैः सुगन्धीकृतम्। देवस्त्रीगणमस्तकस्थितमहारत्नादिकुम्भव्रजैरम्भः शाम्भवि संभ्रमेण विमलं दत्तं गृहाणाम्बिके ॥ ९ ॥ कह्लारोत्पलनागकेसरसरोजाख्यावलीमालतीमल्लीकैरवकेतकादिकुसुमै रक्ताश्वमारादिभिः। पुष्पैर्माल्यभरेण वै सुरभिणा नानारसस्रोतसा ताम्राम्भोजनिवासिनीं भगवतीं श्रीचण्डिकां पूजये ॥ १० ॥ मांसीगुग्गुलचन्दनागुरुरजःकर्पूरशैलेयजैर्माध्वीकैः सह कुङ्कुमैः सुरचितैः सर्पिर्भिरामिश्रितैः। सौरभ्यस्थितिमन्दिरे मणिमये पात्रे

भवेत् प्रीतये धूपोऽयं सुरकामिनीविरचितः श्रीचण्डिके त्वन्मुदे ॥ ११ ॥ घृतद्रवपरिस्फुरद्रुचिररत्नयष्ट्यान्वितो महातिमिरनाशनः सुरनितम्बिनी-निर्मितः । सुवर्णचषकस्थितः सघनसारवर्त्यान्वितस्तव त्रिपुरसुन्दरि स्फुरति देवि दीपो मुदे ॥ १२ ॥ जातीसौरभनिर्भरं रुचिकरं शाल्योदनं निर्मलं युक्तं हिङ्गुमरीचजीरसुरभिद्रव्यान्वितैर्व्यञ्जनैः । पक्वान्नेन सपायसेन मधुना दध्याज्यसंमिश्रितं नैवेद्यं सुरकामिनीविरचितं श्रीचण्डिके त्वन्मुदे ॥ १३ ॥ लवङ्गकलिकोज्ज्वलं बहुलनागवल्लीदलं सजातिफल-कोमलं सघनसारपूगीफलम् । सुधामधुरिमाकुलं रुचिररत्नपात्रस्थितं गृहाण मुखपङ्कजे स्फुरितमम्ब ताम्बूलकम् ॥ १४ ॥ शरत्प्रभवचन्द्रमःस्फुरित-चन्द्रिकासुन्दरं गलत्सुरतरङ्गिणीललितमौक्तिकाडम्बरम् । गृहाण नव-

काञ्चनप्रभवदण्डखण्डोज्ज्वलं महात्रिपुरसुन्दरि प्रकटमातपत्रं महत् ॥१५॥ मातस्त्वन्मुदमातनोतु सुभगस्त्रीभिः सदाऽऽन्दोलितं शुभ्रं चामरमिन्दु-कुन्दसदृशं प्रस्वेददुःखापहम् । सद्योऽगस्त्यवसिष्ठनारदशुकव्यासादि-वाल्मीकिभिः । स्वे चित्ते क्रियमाण एव कुरुतां शर्माणि वेदध्वनिः ॥१६॥ स्वर्गाङ्गणे वेणुमृदङ्गशङ्खभेरीनिनादैरुपगीयमाना । कोलाहलैराकलिता तवास्तु विद्याधरी नृत्यकला सुखाय ॥ १७ ॥ देवि भक्तिरसभावितवृत्ते प्रीयतां यदि कुतोऽपि लभ्यते । तत्र लौल्यमपि सत्फलमेकं जन्मकोटि-भिरपीह न लभ्यम् ॥ १८ ॥ एतैः षोडशभिः पद्यैरुपचारोपकल्पितैः । यः परां देवतां स्तौति स तेषां फलमाप्नुयात् ॥ १९ ॥

—:०:—

श्रीमहालक्ष्मी स्तोत्रम

अगस्त्य उवाच

पद्मे पद्मपलाशाक्षि जय त्वं श्रीपतिप्रिये । जगन्मातर्महालक्ष्मीः संसारार्णवतारिणि ॥ १ ॥ महालक्ष्मि नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं सुरेश्वरि । हरिप्रिये नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं दयानिधे ॥ २ ॥ पद्मालये नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं शिवप्रिये । सर्वभूतहितार्थाय वसुवृष्टिं सदा कुरु ॥ ३ ॥ जगन्मातर्नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं कृपावति । दयावति नमस्तुभ्यं विश्वेश्वरि नमो नमः ॥ ४ ॥ नमः क्षीराब्धितनये नमस्त्रैलोक्यधारिणि । शशिवक्त्रे नमस्तुभ्यं रक्ष मां शरणागतम् ॥ ५ ॥ रक्ष त्वं देवि देवेशि देवदेवेश-वल्लभे । दारिद्र्यात्त्राहि मां लक्ष्मि कृपां कुरु ममोपरि ॥ ६ ॥ नमस्त्रैलोक्य-जननि नमस्त्रैलोक्यपावनि । ब्रह्मादयो नमन्ति त्वां जगदानन्द-

दायिनि ॥ ७ ॥ विष्णुप्रिये नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं जगद्धिते । आर्तिहन्त्रि नमस्तुभ्यं समृद्धिं कुरु मे रमे ॥ ८ ॥ पद्मवासे नमस्तुभ्यं चपलायै नमो नमः । चञ्चलायै नमस्तुभ्यं ललितायै नमो नमः ॥ ९ ॥ नमः प्रद्युम्न-मातस्ते पाहि मां त्वां नमाम्यहम् । परिपालय मां मातर्मां तुभ्यं शरणागतम् ॥ १० ॥ शरणं त्वां प्रपन्नोऽस्मि कमले कमलालये । त्राहि त्राहि महालक्ष्मि परित्राणपरायणे ॥ ११ ॥ पाण्डित्यं शोभते नैव न शोभन्ते गुणा नरे । शीलं चैव न शोभेत महालक्ष्मि त्वया विना ॥ १२॥ तावद्विराजते रूपं तावच्छीलं विराजते । तावद् गुणा नराणां च यावल्लक्ष्मीः प्रसीदति ॥ १३ ॥ लक्ष्मि त्वयालंकृतमानवा ये पापैर्विमुक्ता नृपलोकमान्याः । गुणैर्विहीना गुणिनो भवन्ति विशीलिनः शीलवतां वरिष्ठाः ॥ १४ ॥ लक्ष्मीर्भूषयते रूपं लक्ष्मीर्भूषयते कुलम् । लक्ष्मीर्भूषयते

विद्यां सर्वांल्लक्ष्मीर्विशिष्यते ॥ १५ ॥ लक्ष्मि त्वद्गुणकीर्तने कमलभूर्यायादलं जिह्मतां रुद्राद्या रविचन्द्रदेवपतयो वक्तुं च नैव क्षमाः । अस्माभिस्तव रूपलक्षणगुणा वक्तुं कथं पार्यते मातर्मां परिपाहि विश्वजननि कृत्वा ममेष्टं ध्रुवम् ॥ १६ ॥ दीनार्तिभीतं क्षुधया प्रपीडितं वासोविहीनं तव पार्श्वमागतम् । कृपां विधत्से मम लक्ष्मि सत्वरम्, धनप्रदे मां धननायकं कुरु ॥ १७ ॥ मां विलोक्य जननी हरिप्रिये, निर्धने तव समीपमागतम् । देहि मे झटिति लक्ष्मि कराग्रं वस्त्र-काञ्चन-वरान्नमद्भुतम् ॥ १८ ॥ त्वमेव जननी लक्ष्मीः पिता लक्ष्मीस्त्वमेव च । भ्राता त्वं च सखा लक्ष्मीर्विद्या लक्ष्मीस्त्वमेव च ॥ १९ ॥ त्राहि त्राहि महालक्ष्मि त्राहि त्राहि सुरेश्वरि । त्राहि त्राहि जगन्मातर्दारिद्र्यात्त्राहि वेगतः ॥२०॥ नमस्तुभ्यं जगद्धात्रि विधात्र्यै ते नमो नमः । धर्मध्वजे नमस्तुभ्यं नमः

सम्पत्तिदायिनि ॥२१॥ दारिद्र्यार्णवमग्नोऽहं निमग्नोऽहं रसातले। मज्जमानं करं धृत्वाऽप्युद्धर त्वं रमे द्रुतम् ॥ २२ ॥ किं लक्ष्मि बहुनोक्तेन जल्पितं च तथा पुनः । अन्यन्मे शरणं नास्ति सत्यं सत्यं हरिप्रिये ॥ २३ ॥ एतच्छ्रुत्वाऽगस्त्यवाक्यं हर्षपूर्णा हरिप्रिया । उवाच मधुरां वाणीं तुष्टाऽहं तव सुव्रत ॥ २४ ॥

श्रीरुवाच

यत्त्वयोक्तमिदं स्तोत्रं ये पठिष्यन्ति मानवाः । ये शृण्वन्ति महाभक्त्या तस्याहं वशवर्तिनी ॥ २५ ॥ नित्यं पठन्ति ये भक्त्याष्यलक्ष्मी-स्तस्य नश्यति । ऋणं नश्यति शीघ्रं च वियोगं नैव पश्यति ॥ २६ ॥ यः पठेत्प्रातरुत्थाय श्रद्धाभक्तिसमन्वितः । गृहे तस्य सदा तिष्ठेन्नित्यं श्रीः पतिना सह ॥ २७ ॥ सुखसौभाग्यसम्पन्नो मनुष्यो बुद्धिमान्भवेत् ।

पुत्रवान् पशुमान् श्रेष्ठो भुक्त्वा भोगाँश्च मानवः ॥ २८ ॥ कीर्तिमाँश्च महाभाग्यो नारायणपदं लभेत् । अपुत्रा पुत्रिणः सन्तु पुत्रिणः सन्तु पौत्रिणः ॥ २९ ॥ निर्धनाः सधना सन्तु जीवन्तु शरदां शतम् । इदं स्तोत्रं महापुण्यं महालक्ष्म्याः प्रकीर्तितम् । विष्णुप्रसादजननं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ ३० ॥ राजद्वारे जयश्चैव शत्रोश्चैव पराजयः । भूतप्रेतपिशाचानां व्याघ्राणां न भयं तथा ॥ ३१ ॥ न शस्त्रानलतोयौघाद् भयं तस्य प्रजायते । दुर्वृत्ताणां च पापानां बहुहानिकरं परम् ॥ ३२ ॥ मन्दुराकरिशालासु गवां गोष्ठे समाहितः । पठेत्तद्दोषशान्त्यर्थं महापातकनाशनम् ॥ ३३ ॥ सर्वसौख्यकरं नृणामायुरारोग्यदं तथा । अगस्तिमुनिना प्रोक्तं प्रजानां हितकाम्यया ॥ ३४ ॥

॥ इत्यगस्त्यविरचितं लक्ष्मीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

——:०:——

श्रीमहालक्ष्म्यष्टकम्

नमस्तेऽस्तु महामाये श्रीपीठे सुरपूजिते । शङ्खचक्रगदाहस्ते महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥ १ ॥ नमस्ते गरुडारूढे कोलासुरभयङ्करि । सर्वपापहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥ २ ॥ सर्वज्ञे सर्ववरदे सर्वदुष्टभयङ्करि । सर्वदुःखहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥ ३ ॥ सिद्धिबुद्धिप्रदे देवि भुक्तिमुक्तिप्रदायिनि । मन्त्रपूते सदा देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥ ४ ॥ आद्यन्तरहिते देवि आद्यशक्ति महेश्वरि । योगजे योगसंभूते महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥ ५ ॥ स्थूलसूक्ष्ममहारौद्रे महाशक्ति महोदरे । महापापहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥ ६ ॥ पद्मासनस्थिते देवि परब्रह्मस्वरूपिणि । परमेशि जगन्मातर्महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥ ७ ॥

श्वेताम्बरधरे देवि नानालङ्कारभूषिते । जगत्स्थिते जगन्मातर्महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥ ८ ॥ महालक्ष्म्यष्टकस्तोत्रं यः पठेद्भक्तिमान्नरः । सर्वसिद्धिमवाप्नोति राज्यं प्राप्नोति सर्वदा ॥ ९ ॥ एककाले पठेन्नित्यं महापापविनाशनम् । द्विकालं यः पठेन्नित्यं धनधान्यसमन्वितः ॥ १० ॥ त्रिकालं यः पठेन्नित्यं महाशत्रुविनाशनम् । महालक्ष्मीर्भवेन्नित्यं प्रसन्ना वरदा शुभा ॥ ११ ॥

॥ इति इन्द्रकृतः श्रीमहालक्ष्म्यष्टकस्तवः संपूर्णः ॥

अथ नवचण्डीशतचण्डीसहस्रचण्डीप्रयोगः ।

श्री गणेशाय नमः ॥ यजमानः शुभदिने सपत्नीकस्तिलतैलेन कृताभ्यंगः स्नात्वा संपूर्ण-कलशहस्तो मंडपं प्रदक्षिणीकृत्य पश्चिमद्वारेण प्रविश्योपविश्य देशकालौ स्मृत्वा ममेह जन्मनि दुर्गाप्रीतिद्वारा सर्वापच्छान्तिपूर्वकदीर्घायुर्विपुलधनधान्यपुत्रपौत्राद्यनवच्छिन्नसन्तति-स्थिरलक्ष्मीकीर्तिलाभशत्रुपराजयसदभीष्टसिद्धयर्थं ममामुककार्यसिद्धयर्थंवा सनवग्रहमखां नवचण्डीं शतचण्डीं सहस्रचण्डीं वा ब्राह्मणद्वाराकरिष्ये । तदंगतयागणेशपूजनं पुण्याहवाचनं मातृकापूजनं नान्दीश्राद्धमाचार्यादिवर्णं च करिष्ये ॥ इति संकल्प्य तानि कृत्वा आचार्या-दीन्वृत्वा तान्यथाविभवं वस्त्रादिना संपूज्य प्रार्थयेच्च ॥ ते च शतचंडयां दश ॥ सहस्रचंडयां शतम् ॥ केचिदत्र ग्रहजपार्थमेकमृत्विजं वरयंति ॥ अथाचार्य आचम्य देशकालौ संकीर्त्य यजमानेन वृतोहमाचार्यकर्म करिष्ये इति संकल्प्य यदत्रेतिगौरसर्षपान्विकीर्य पंचगव्येन कुशोदकेन वा मंडपं प्रोक्षेत् ॥ शुचीवो हव्या० आपोहिष्ठा० अपवित्रा० ॥ पृथ्वि त्वया०

इत्युपविश्य अनंतासनाय नमः ॥ विमलासनाय० ॥ पद्मासनाय० ॥ अपक्रामंतु० इतिभूमौ-वामपादघातत्रयं कृत्वा यथोपदेशंविस्तरतः संक्षेपेणवाभूतशुद्धयादिकृत्वानवार्णविध्युक्तं काद-शन्यासान्कुर्यात् ॥ अथवैकादशमेवैकंन्यासं कुर्यात् ॥ ततोयोनिमुद्रां प्रदर्श्यध्यायेत् । श्वेतानना नीलभुजा सुश्वेतस्तनमंडला । रक्तमध्यारक्तपादा नीलजंघोरुरुन्मदा ॥ सुचित्रजघना चित्र-माल्यांबरविभूषणा । चित्रानुलेपनाकांतिरूपसौभाग्यशालिनी ॥ अष्टादशभुजा पूज्या सा सहस्त्रभुजा सती । आयुधान्यत्र वक्ष्यंते दक्षिणाधः-करक्रमात् ॥ अक्षमालाचकमलं बाणोसिः कुलिशंगदा । चक्रं त्रिशूलं परशुःशंखोघंटा च पाशकः ॥ शक्तिर्दण्डश्चर्म चापं पानपात्रं कमंडलुरिति ॥ ततोवेद्यां सर्वतोभद्रमष्टदलंवा विलिख्यतत्र ब्रह्मादिमंडलदेवताः संस्थाप्य तन्मध्ये महीद्यौरित्यादिमंत्रैः कलशं संस्थाप्य तस्मिन्गंधपुष्पफलसर्वौषधीदूर्वापंचपल्लव-सप्तमृत्तिकास्तत्तन्मंत्रेण निक्षिप्य वस्त्रद्वयेनावेष्टय तदुपरि पूर्णपात्रं निधाय कलशे वरुण-मावाह्य पूजयेत् ॥ ततः कलशे देवताः स्मरेत् ॥ कलशस्य मुखे विष्णुः० देवदानव-संवादे मथ्य० प्रसन्नो भव सर्वदा इति कलशं प्रार्थयेत् ॥ तथा कलशोपरिस्थपूर्ण पात्रे वस्त्रे यंत्रं

लिखेत् ॥ तद्यथा ॥ मध्ये त्रिकोणंतद्बहिः षट्कोणं तद्बाह्ये वृत्तं तद्बाह्येऽष्टौ दलानि तद्बाह्ये चतुर्द्वारं चतुरस्रत्रयमिति एवं यंत्रं विलिख्य तत्राष्टादशभुजां अष्टभुजां वा सिंहारूढां सौवर्णी देवीमूर्तिमग्न्युत्तारणप्राणप्रतिष्ठापूर्वकं प्रतिष्ठाप्य पूजयेत् ॥ तद्यथा ॥ स्ववामे कर्पूरादियुतजलपूर्णं कलशं संपूज्य कलशस्य मुखे० गंगे च यमुने इत्यादि पठित्वा कलशमुद्रां प्रदर्श्य दक्षिणतः शंखं संपूज्य ॥ शंखं चंद्रार्कदैवत्यमित्यादि पठित्वा शंखं मुद्रां प्रदर्श्य शंखोदकेनात्मानं पूजाद्रव्याणि च प्रोक्षेत् ॥ अपवित्रः पवित्रो वा० ॥ पीठपूजां कुर्यात् ॥ देवीदक्षिणे गुं गुरुभ्यो नमः ॥ पं परमगुरुभ्यो नमः ॥ पं परात्परगुरुभ्यो नमः ॥ पं परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः ॥ वामे गं गणपतये नमः ॥ दुं दुर्गायै नमः ॥ क्षं क्षेत्रपालाय० ॥ मध्ये आधारशक्त्यै नमः मूलप्रकृत्यै० ॥ कालाग्निरुद्राय० ॥ महामंडूकाय० कूर्माय० वराहाय० अनंताय० भूम्यै० अमृतार्णवाय० रत्नद्वीपाय० हेमगिरये० नंदनोद्यानाय० मणिभूम्यै० रत्नमंडपाय० कल्पतरवे० रत्नसिंहासनाय० ॥ आग्नेयादिकोणेषु धर्माय० ज्ञानाय० वैराग्याय० ऐश्वर्याय० अधर्माय० अज्ञानाय० अवैराग्याय० अनैश्वर्याय० ऊर्ध्वं ब्रह्मणे० अधः अनंताय० मध्ये वास्तुपुरुषाय० सं

सत्त्वाय० रं रजसे० तं तमसे० मां मायायै० विं विद्यायै० ।। पूर्वाद्यष्टदिक्षु उड्डाणपीठेश्वर-सहितामुड्डाणपीठेश्वयम्बापादुकां पूजयामि ।। मातृकापीठेश्वरसहितां मातृकापीठेश्चर्यम्बापा-दुकां० ।। जालंधरपीठेश्वरसहितां जालंधरपीठेश्वर्यम्बापा० ।। कोल्हापुरपीठेश्वरसहितां कोल्हा-गिरिपीठेश्वर्यम्बापादु० ।। पूर्णगिरिपीठेश्वरसहितां पूर्णगिरिपीठेश्वर्यम्बापादुकां पू० ।। संहार-गिरिपीठेश्वरसहितां संहारगिरिपीठेश्वर्यम्बापा० ।। कोल्हापुरपीठेश्वरसहितां कोल्हापुरपीठे-श्वर्यम्बापा० ।। कामरूपपीठेश्वरसहितां कामरूपपीठेश्वर्यम्बापा० ।। पुनः पूर्वादिचतुर्दिक्षु गं गणेशाय नमः क्षं क्षेत्रपालाय० पां पादुकाभ्यो० वं वटुकेभ्यो० ।। आग्नेय्यादिविदिक्षु जं जयायै नमः विं विजयायै नमः जं जयंत्यै० अं अपराजितायै० ।। तत्रैव अग्निमुखवेतालाय नमः प्रेतवाहनवेतालाय नमः ज्वालामुखवेताला० धूम्राक्षवेताला० कंदाय० नालाय० दले-भ्यो० केसरेभ्यो नमः कर्णिकायै० अं सूर्यमंडलाय० उं सोममंडलाय० मं वह्निमंडलाय० अं आत्मने० उं अंतरात्मने० पं परमात्मने० उं ज्ञानात्मने० विं विष्णुमायायै० चें चेतनायै० बुं बुद्ध्यै० निं निद्रायै० क्षुं क्षुधायै० छां छायायै० शं शक्त्यै० तृं तृष्णायै० क्षां क्षांत्यै०

जां जात्यै० लं ललितायै० शां शान्त्यै० श्रं श्रद्धायै कां कान्त्यै० लं लक्ष्म्यै० धृं धृत्यै० वृं वृद्ध्यै० स्मृं स्मृत्यै० दं दयायै० तुं तुष्ट्यै० पुं पुष्ट्यै० मां मातृकायै० भ्रां भ्रांत्यै० ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय० सर्वात्मसंसर्गयोगपीठात्मने० इतिपाठपूजा ।। तथा स्थापितमूर्तौ देवीमावाहयेत् ।। आगच्छ वरदे देवि दैत्यदर्पनिषूदिनि ।। पूजां गृहाण सुमुखि नमस्ते शंकरप्रिये ।। दुर्गे देवि समागच्छ सान्निध्यमिह कल्पय ।। बलिं पूजां गृहाण त्वमष्टाभिः शक्तिभिः सह । इति मंत्रौ पठित्वा मूर्तौ देवीमावाह्य मूलमंत्रेण जयंतीमंगलाकालीत्यनेनवा आसनपाद्यार्घ्याचमनमधुपर्कान्निवेदयेत् ।। ततः पंचामृतस्नानम् ।। देवीसूक्तश्रीसूक्तसरस्वतीसूक्तैर्देवीमाहात्म्योक्तैः शक्रादय इत्यादिस्तोत्रैश्चाभिषेकः ।। ततः पूर्वोक्तमंत्रेण वस्त्रकंचुकाभरणाष्टगंधबिल्वपत्रनानापुष्पहरिद्राकुंकुमसिंदूरालक्तकपरिमलद्रव्याणि समर्पयेत् ।। अथांगपूजा ।। दुर्गायै० पादा० ।। गिरिजायै० गुल्फौ० ।। अपर्णायै० जानुनी० ।। हरिप्रियायै० ऊरू० ।। पार्वत्यै० कटिं० ।। आर्यायै० नाभिं० ।। जगन्मात्रे उदरं० ।। मंगलायै० कुक्षिं० ।। शिवायै० हृदयं ।। माहेश्वर्यै कंठं० ।। विश्ववंद्यायै० स्कंधौ० ।। काल्यै० बाहू० ।। आद्यायै० हस्तौ० ।। वरदायै० मुखं० ।।

सुवाण्यै० नासिकां० ॥ कमलाक्ष्यै० नेत्रे० ॥ अंबिकायै शिरः० ॥ देव्यै० सर्वांगं० ॥ अथाष्टोत्तरशतनामानि ॥ माहेश्वर्यैं नमः महादेव्यै० जयंत्यै० सर्वमंगलायै० लज्जायै० भगवत्यै० वंद्यायै० भवान्यै० पापनाशिन्यै० चंडिकायै० कालरात्र्यै० भद्रकाल्यै० अपराजितायै० महाविद्यायै० महामेधायै० महामायायै० महाबलायै० कात्यायन्यै० जयायै० दुर्गायै० मंदारवनवासिन्यै० आर्यायै० गिरिसुतायै० धात्र्यै० महिषासुरघातिन्यै० सिद्धिदायै० बुद्धिदायै० नित्यायै० वरदायै० वरवर्णिन्यै० अंबिकायै० सुखदायै० सौम्यायै० जगन्मात्रे० शिवप्रियायै० भक्तसंतापसहर्त्र्यैं० सर्वकामप्रपूरिण्यै० जगत्कर्त्र्यैं० जगद्धात्र्यै० जगत्पालनतत्परायै० अव्यक्तायै० व्यक्तरूपायै० भीमायै० त्रिपुरसुंदर्यै० अपर्णायै० ललितायै० वेद्यायै० पूर्णचन्द्रनिभाननायै० चामुंडायै० चतुरायै० चंद्रायै० गुणत्रयविभाविन्यै० हेरंबजनन्यै० काल्यै० त्रिगुणायै० यशोधारिण्यै० उमायै० कलशहस्तायै० दैत्यदर्पनिषूदिन्यै० बुद्धयै० कांत्यै० क्षमायै० शांत्यै० पुष्टयै० तुष्टयै० धृत्यै० मत्यै० वरायुधधरायै० धीरायै० गौर्यैं० शाकंभर्यैं० शिवायै० अष्टसिद्धिप्रदायै० वामायै० शिववामांगवासिन्यै०

धर्मदायै० धनदायै० श्रीदायै० कामदायै० मोक्षदायै० अपरायै० चित्स्वरूपायै० चिदानन्दायै० जयश्रियै० जयदायिन्यै० सर्वमंगलमंगल्यायै० जगत्त्रयहितैषिण्यै० शर्वाण्यै० पार्वत्यै० धन्यायै० स्कन्दमात्रे० अखिलेश्वर्यै० प्रपन्नार्तिहरायै० देव्यै० सुभगायै० कामरूपिण्यै० निराकारायै० साकारायै० महाकाल्यै० सुरेश्वर्यै० शर्वायै० श्रद्धायै० ध्रुवायै० कृत्यायै० मृडान्यै० भक्तवत्सलायै० सर्वशक्तिसमायुक्तायै० शरण्यायै० सर्वकामदायै० । इत्यष्टोत्तरशतनामानि ।। अथावरणपूजा ।। देव्या दक्षिणे ऐं महाकाल्यै० विच्चे नमः ।। वामे ह्रीं महालक्ष्म्यै विच्चे नमः ।। पुरतःक्लीं महासरस्वत्यै विच्चे नमः ।। वामे ह्रूं महिषाय नमः ।। दक्षिणे क्ष्रौं सिंहाय नमः । पुरतः गं गणपतये नमः । ह्रूं कालाय नमः पश्चात् ह्रूं मृत्यवे नमः ।। षड्दलेषु ह्रैं रुद्रय नमः । ह्रौं गौर्यै नमः ।। श्रीं विष्णवे नमः । श्रीं लक्ष्म्यै नमः ।। ऐं ब्रह्मणे नमः ।। ऐं सरस्वत्यै नमः । तत्रैव ह्रां हृदयाय नमः ।। ह्रीं शिरसे स्वाहा ।। ह्रूं शिखायै वषट् ।। ह्रैं कवचाय हुं ।। ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् ।। ह्रः अस्त्राय फट् ।। तत्रैव गुं गुरुभ्यो नमः ।। पं परमगुरुभ्यो नमः ।। पं परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः ।। हरये नमः ।। हराय नमः ।। गणेशाय नमः ।। तत्रैव नंदजायै नमः ।। रक्त-

दंतिकायै० शाकंभर्यै० दुर्गायै० भीमयै० भ्रामर्यै० ।। अथाष्टदलेषु ब्राह्म्यै० माहेश्वर्यै० कौमार्यै० वैष्णव्यै० वाराह्यै० इंद्राण्यै० नारसिंह्यै० चामुंडायै० पूर्वादिदिक्षु अं असितांग-भैरवाय० रुं रुरुभैरवाय० चं चंडभैरवाय० क्रों क्रोधभैरवाय० उं उन्मत्तभैरवाय० कं कपालभैरवाय० भीं भीषणभैरवाय० सं संहारभैरवाय० ।। पुनः पूर्वादिषु लं इन्द्राय० रं अग्नये० यं यमाय० क्षं निर्ऋतये० वं वरुणाय०यं वायवे० सं सोमाय० हं ईशानाय० ।। तद्बहिः पूर्वादि० वज्राय० शक्त्यै० दंडाय० खड्गाय० पाशाय० अंकुशाय० गदायै० त्रिशूलाय० इत्यावरणपूजा ।। ततः पूर्वोक्तमंत्रेण धूपदीपनैवेद्यादिमंत्रपुष्पांतपूजां कृत्वा नमो देव्यैमहादेव्यैइत्यादि मंत्रै र्नमस्कृत्य यथासंभवं छत्रचामरगीतनृत्यवाद्यादिसमर्प्य कूष्मांडनारि-केलकदलीफलादिबलिं दत्त्वा मंत्रहीनं क्रियाहीनं० आवाहनं न जानामि० ।। अनेन पूजनेन श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यः प्रीयन्ताम् ।। ततः कुमारीपूजा ।। देशकालौ संकीर्त्य शत-चंडीजपांगत्वेन कुमारीपूजां करिष्ये इति संकल्प्य मूलेन षडंगं कृत्वा मूलमंत्रमुच्चार्य ।। मंत्राक्षर-मयीं देवीं मातॄणां रूपधारिणीम् । नवदुर्गात्मिकां साक्षात्कन्यामावाहयाम्यहम् ।। इति कुमारी-

मावाह्य यथासंभवं पूजयेत् ॥ कुमार्यश्च प्रत्यहं शतं नव एका वा यथाशक्ति व पूज्याः । प्रत्यहमेक-वृद्ध्या वा पूजयेत् ॥ ततो ब्राह्मणसुवासिनीपूजा ॥ एवं देवी कुमार्यादिपूजा प्रत्यहं कार्या ॥ ततः सर्वे विप्राः कृतांगन्यासाः शतं नवार्णमंत्रं जप्त्वा कवचार्गलाकीलकानि सकृज्जप्त्वा सप्तशतीं जप्त्वांते रहस्यानि नवार्णशतं च जपेत् एकस्मिन्दिने अनेकावृत्तौ तु कवचादीनां प्रत्यावृत्तिना-वृत्तिः ॥ एवमृत्विजः प्रथमदिने एकं द्वितीये द्वे तृतीये त्रीणि चतुर्थे चत्वारि रूपाणीत्येवं जपं कुर्युः ॥ ऋत्विजां यजमानस्य च प्रत्यहं क्षीरमात्राशनं अशक्तौ हविष्याशनं वा प्रत्यहं सहस्रं शतं दश वा ब्राह्मणान् भोजयेत् पंचमेऽह्नि होमः । नवरात्रे तु नवम्यामेव होमः केचित्तु अष्ट-म्यामारभ्य नवभ्यां समापयंति ॥ अथ होमः देशकालौ स्मृत्वा मया ब्राह्मणद्वाराकृतस्य शत-चंडीजपस्य तत्संपूर्णतासिद्ध्यर्थं जपदशांशेन तिलादिमिश्रपायसद्रव्येण होमं करिष्ये इति संकल्प्य ॥ अत्र केचित्पुण्याहवाचनमपि कुर्वन्ति ॥ तथा पूर्वोक्तकलशस्थापनं देवतास्थापन-पूजनं चात्रैव कुर्वन्ति ॥ ततः सनवग्रहशतचंडीजपदशांशहोमं कर्तुं स्थंडिलादिकरिष्ये इति संकल्प्य ॥ स्थंडिलमुपलिप्योल्लिख्य तत्र (शत) मंगलनामानमग्निं प्रतिष्ठाप्य समिध्या-

येत् ।। ततः प्रागकृतं चेदिदानीमीशान्यां दिशि नवग्रहस्थापनं कृत्वा तत्पूर्वतः कलशं स्थापयेत् ।। ततोग्निसमीपभागत्यान्वाधानं कुर्यात् ।। समिद्द्वयमादाय क्रियमाणे शतचंडीजपांगहोमे देवतापरिग्रहार्थमन्वाधानं करिष्ये ।। अस्मिन्नन्वाहितेग्नावित्यादिचक्षुषी आज्येनेत्यंतमुक्त्वा ।। आदित्यादिनवग्रहान् प्रतिद्रव्यमष्टाविंशति अष्ट वा संख्याकाभिः समित्तिलाज्याहुतिभिः अधिदेवताः प्रत्यधिदेवताश्च चतुःसंख्याकाभिः तैरेव द्रव्यैः विनायकाद्या देवता इंद्राद्यष्टौ लोकपालांश्च द्वाभ्यां द्वाभ्यां समित्तिलाज्याहुतिभ्यां यक्ष्ये ।। महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वतीः मूलमंत्रेण शतवारं सप्तशतीमंत्रैः जपदशांशसंख्यया पायसतिलपलाशपुष्पसर्षपपूगीफललाजादूर्वांकुरयवबिल्वफलरक्तचंदनगुग्गुलुद्रव्यैर्यथालाभद्रव्यैर्वा तिलमिश्रितपायसेन वा पुनर्मूलमंत्रेण शतवारं तैरेव द्रव्यैः आधारशक्त्यादिपीठदेवताः महाकाल्याद्यावरणदेवताश्च एकैकाहुत्या पायसाज्येन यक्ष्ये ।। शेषेण स्विष्टकृतमित्याद्याज्यभागांतं कृत्वा ।। यजमानः इदं हवनीयद्रव्यं यथादैवतमस्तु न ममेति त्यजेत् ।। नवग्रहादिभ्यः समित्तिलाज्यानि हुत्वा उक्तद्रव्याणि मूलमंत्रेण शतवारं हुत्वा सप्तशतीमंत्रैर्जपदशांशेन हुत्वा पुनर्मूलमंत्रेण

शतवारं जुहुयात् ।। मूलमंत्रो नवार्णमंत्रः ।। नवार्णमंत्रस्य केवलाज्येनैव वा होमः ।। अत्रा-
ध्यायसमाप्तौ उवाचस्थले च पत्रपुष्पफलैर्होमः ।। एवं प्रधानहोमं कृत्वा पीठदेवताभ्यो नामभि-
राज्यं पायसं च जुहुयात् ।। आधारशक्त्यै० मूलप्रकृत्यै० कालाग्निरुद्राय० महामंडूकाय०
कूर्माय० बराहाय० अनंताय० भूम्यै० अमृतार्णवाय० रत्नद्वीपाय० हेमगिरये० नंदनोद्या
नाय० मणिभूम्यै० रत्नमंडपाय० कल्पतरवे० रत्नसिंहासनाय० धर्माय० ज्ञानाय० वैरा-
ग्याय० ऐश्वर्याय० अधर्माय० अज्ञानाय० अवैराग्याय० अनैश्वर्याय० ब्रह्मणे० अनंताय०
वास्तुपुरुषाय० सं सत्याय० रं रजसे० तं तमसे० मां मायायै० विं विद्यायै० उड्डाण-
पीठेश्वरसहितोड्डाणपीठेश्वर्यम्बायै० मातृकापीठेश्वरसहितमातृकापीठेश्वर्यम्बायै० जालंधर-
पीठेश्वरसहितजालंधरपीठेश्वर्यम्बायै० कोल्हागिरिपीठेश्वरसहितकोल्हागिरिपीठेश्वर्यम्बायै०
पूर्णगिरिपीठेश्वरसहितपूर्णगिरिपीठेश्वर्यम्बायै० संहारगिरिपीठेश्वरसहितसंहारगिरिपीठेश्व-
र्यम्बायै० कोल्हापुरपीठेश्वरसहितकोल्हापुरपीठेश्वर्यम्बायै० कामरूपपीठेश्वरसहितकामरूप-
पीठेश्वर्यम्बायै० गं गणेशाय० क्षं क्षेत्रपालाय० पां पादुकाभ्यो० वं वटुकेभ्यो० जं जयायै०

विं विजयायै० जं जयंत्यै० अं अपराजितायै० अग्निमुखवेतालाय० प्रेतवाहनवेतालाय० बालामुखवेतालाय० धूम्राक्षवेतालाय० कंदाय० नालाय० दलेभ्यो० केसरेभ्यो० कर्णिकायै० अं सूर्यमंडलाय० उं सोममंडलाय० मं वह्निमंडलाय० अं आत्मने० उं अंतरात्मने० पं परमात्मने० उं ज्ञानात्मने० विं विष्णुमायायै० चें चेतनायै० बुं बुद्ध्यै० निं निद्रायै० क्षुं क्षुधायै० छां छायायै० शं शक्त्यै० तृं तृष्णायै० क्षं क्षांत्यै० जां जात्यै० लं ललितायै० शां शांत्यै० श्रं श्रद्धायै कां कांत्यै० लं लक्ष्म्यै० धृं धृत्यै० वृं वृद्ध्यै० स्मृं स्मृत्यै दं दयायै० तुं तुष्ट्यै० पुं पुष्ट्यै० मां मातृकायै० भ्रां भ्रांत्यै० ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय० सर्वात्मसंसर्गयोगपीठात्मने० इति पीठदेवताहोमः । अथावरणदेवताः । ऐं महाकाल्यै विच्चे ह्रीं महालक्ष्म्यै० विच्चे क्लीं महासरस्वत्यै विच्चे ह्रूं महिषाय० क्षं सिंहाय० गं गणपतये० ह्रूं कालाय० ह्रूं मृत्यवे० ह्रैं रुद्राय ह्रौं गौर्यै० श्रीं विष्णवे० श्रीं लक्ष्म्यै० ऐं ब्रह्मणे० ऐं सरस्वत्यै० ह्रां हृदयाय० ह्रीं शिरसे० ह्रूं शिखायै० ह्रैं कवचाय हुं० ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्० ह्रः अस्त्रायफट्० गुं गुरुभ्यो० पं परमगुरुभ्यो० पं परमेष्ठिगुरुभ्यो० हरये०

हराय० गणेशाय० नंदजायै० रक्तदंतिकायै० शाकंभर्यै० दुर्गायै० भीमायै० भ्रामर्यै० ब्राह्म्यै० माहेश्वर्यै० कौमार्यै० वैष्णव्यै० वाराह्यै० इंद्राण्यै० नारसिंह्यै० चामुंडायै० अं असितांगभैरवाय० रुं रुरुभैरवाय० चं चंडभैरवाय० क्रों क्रोधभैरवाय० उं उन्मत्तभैरवाय० कं कपालभैरवाय० भीं भीषणभैरवाय० सं संहारभैरवाय० लं इंद्राय० रं अग्नये० मं यमाय० क्षं निर्ऋतये० वं वरुणाय० यं वायवे० सं सोमाय० हं ईशानाय० वज्राय० शक्त्यै० दंडाय० खड्गाय० पाशाय० अंकुशाय० गदायै० त्रिशूलाय० ॥ एवं होमं कृत्वा स्विष्टकृदादिप्रायश्चित्तहोमांतं कृत्वा इंद्रादिनवग्रहक्षेत्रपालादिभ्यो माषभक्तबलींस्तत्तन्मंत्रैर्द-द्यात् ॥ तत्र मंत्राः ॥ इंद्रंवा० इंद्रः सुरपतिश्चैव वज्रहस्तो महाबलः ॥ शतयागाधिपो देवस्तस्मै नित्यं नमो नमः ॥ इंद्राय सांगाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय इमं माषभक्तबलिं समर्प-यामि भो इंद्र इमंबलिं भक्ष दिशंरक्ष ममयजमानस्यायुःकर्ता शांतिकर्तापुष्टिकर्तातुष्टिकर्ता कल्या-णकर्ता वरदो भव ॥ अनेन बलिदानेन इंद्रः प्रीयताम् ॥ १ ॥ अग्निदूतं० आग्नेयः पुरुषो रक्तः सर्वदेवमयोऽव्ययः ॥ धूम्रकेतुरनाधृष्यस्तस्मै नित्यं नमोनमः ॥ अग्नये० इत्यादि० ॥ २ ॥ यमाय सोमं० । यमश्चोत्पलपत्राक्षः किरीटी दंडधृक्सदा ॥ लोकसाक्षी विशुद्धात्मा तस्मै नित्यं

नमोनमः ।। यमाय सांगायेत्यादि० ।। ३ ।। मोषुणः परापरा० । निर्ऋतिस्तु पुमान्कृष्णः सर्व-रक्षाधिपो महान् ।। खड्गहस्तो महासत्वस्तस्मै नित्यं० निर्ऋतये सांगायेत्यादि० ।। ४ ।। तत्त्वायामि० वरुणः सर्वलोकेषु पुरुषो निम्नगाधिपः ।। पाशहस्तो महाबाहुस्तस्मै नित्यं० वरुणाय सांगायेत्यादि० ।। ५ ।। तववाय० सर्वप्राणात्मको वायुः सर्वजंतुष्ववस्थितः ।। ध्वज-हस्तो महाप्राणस्तस्मै नित्यं० वायवे सांगायेत्यादि० ।। ६ ।। सोमोधेनुं० गौरो यस्तु पुमान्सौ-म्यः सर्वौषधिसमन्वितः ।। नक्षत्राधिपतिः सोमस्तस्मै नित्यं० सोमाय सांगायेत्यादि० ।। ७ ।। तमीशानं० ईशानः पुरुषः शुक्लः सर्वदेवाधिपो महान् ।। शूलहस्तो विरूपाक्षस्तस्मै नित्यं० ईशा-नाय सांगायेत्यादि० ।। ८ ।। आयं गौः प्रश्नि० योसावनंतरूपेण ब्रह्मांडं सचराचरम् ।। पुष्प-वद्धारयेन्मूर्ध्नि तस्मै नित्यं० अनंताय सांगायेत्यादि० ।।९।। ब्रह्मयज्ञानं० पद्मयोनिश्चतुर्मूर्तिर्वेदा-वासः पितामहः ।। कमंडलुधरो देवस्तस्मै० ब्रह्मणेसांगायेत्यादि० ।। १० ।। नवग्रहेभ्यः सांगेभ्य इत्यादिनाग्रहेभ्यो बलिं दत्त्वा क्षेत्रपालाय दद्यात् ।। क्षेत्रस्य पतिना० सर्वभूताधिपाय क्षेत्राधिपतये शाकिनीडाकिनीभूतप्रेतपिशाचादि परिवारसहिताय इमं बलिं समर्पयामि ।। भो क्षेत्रपाल इमं बलिं भक्ष दिशो रक्ष मम यजमानस्य वा आयुः कर्तेत्यादि० बलिं गृह्णंत्विमं देवा

आदित्या वसवस्थता ।। मरुतश्चाश्विनौरुद्राः सुपर्णा पन्नगाः खगाः ।। असुरा यातुधानाश्च पिशाचोरगराक्षसाः ।। डाकिन्यो यक्षवेताला योगिन्यः पूतनाः शिवाः । जृंभकाः सिद्धगंधर्वा नागाविद्याधरा नगाः । दिक्पाला लोकपालाश्च ये च विघ्नविनायकाः ।। जगतां शांतिकर्तारो ब्रह्माद्याश्च महर्षयः ।। मा विघ्नं च मे पापं मा संतु परिपंथिनः ।। सौम्या भवंतुतृप्ताश्च भूतप्रेताः सुखावहाः ।। इति मंत्रान्पठेत् ।। अयंबलिः शूद्रेण दुर्ब्राह्मणेन वा नेयः ।। ततो हस्तौ पादौ प्रक्षाल्याचम्य पूर्णाहुतिं जुहुयात् ।। स्रुचिस्रुवेणद्वादशवारमाज्यं गृहीत्वा नारिकेलादि च गृहीत्वा ।। समुद्रादूर्मि० ३ मूर्धानं० १ पुनस्त्वा० पूर्णादर्वि० सप्ततेअग्ने० धामंते विश्व० मूलमंत्रः नमोदेव्यै इत्यादि मंत्राश्च ।। ततो वसोर्धारां हुत्वा प्रणीताविमोकादिकर्मशेषं समाप्य ।। मूलमन्त्रेण होमदशांशेन दुग्धेन जलेन वा तर्पणं कृत्वा तेनैव मंत्रेण तद्दशांशेन मार्जयेत् ।। ततो यजमान आचार्यादींवस्त्राद्यैःसंपूज्य तेभ्यो गोमिथुनानि हिरण्यं च दद्यात् तत आचार्यादिभ्योऽन्येभ्यो वा कपिलागोनीलमणिश्वेताश्वछत्रचामरभूमिशय्यासप्तधान्यानि यथासंभवं वा दद्यात् ।। तत आचार्यादयः कलशोदकेन सपत्नीकं सकुटुंबं यजमानं समुद्रज्येष्ठ इत्यादिभिःसुरास्त्वेत्यादिभिर्ग्रहमंत्रैश्चाभिषिचेयुः ।। ततो यजमानो ग्रहाणामुत्तरपूजां कृत्वाचार्येण विसर्जने कृते ग्रहपीठदानं कृत्वा देवीं पंचोपचारैः संपूज्य

महाबलिं दद्यात् ।। तत्र क्षत्रियादिनाश्वमेषछागमहिषाणामन्यतरो देयः ।। विप्रेण तु कूष्माण्ड-बिल्वमिक्षवश्च देयाः । स चेत्थम् । देवीं द्रोणपुष्पबिल्वाम्रदलजातीचंपकैः संपूज्य कर्ता उदङ्-मुखः देवीमुखं वा बलिं गंधादिनाभ्यर्च्य ।। पशुस्त्वं बलिरूपेण मम भाग्यादुपस्थितः ।। प्रणमामि ततः सर्वरूपिणं बलिरूपिणम् ।। चंडिकाप्रीतिदानेन दातुरापद्विनाशनम् । चामुंडा-बलिरूपाय बले तुभ्यं नमोस्तु ते । यज्ञार्थे बलयः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा ।। अतस्त्वां घातयाम्यद्य तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः इति बलिमभिमन्त्र्य ऐं ह्रीं श्रीं इति मंत्रपुष्पं क्षिप्त्वा ।। रसना त्वं चंडिकायाः सुरलोकप्रसाधकः । ह्रां ह्रीं खड्ग आं हुं फट् इति खड्गमन्यद्वा शस्त्रं संपूज्य ॐ कालि कालि यज्ञेश्वरि लोहदंडायै नमः ।। इति बलिं छेदयित्वा ॐ ह्रीं ऐं ह्रीं कौशिकरुधिरेणाप्यायतां इति देव्यै निवेद्य ततो माषपिष्टमयं शत्रुं कृत्वा खड्गेन छेदयित्वा स्कंदाय विशिखाय च दत्त्वा बलिशेषं रक्षोभ्यो हरेत् ।। मंत्रस्तु ॐ ह्रीं स्फुर स्फुर कुंभ २ सूनु २ गुलु २ धुनु २ मारय २ विद्रावय २ विदारय २ कंपय २ कंपातय २ पूरय २ ॐ ह्रीं ॐ हुं फट् २ हुं मर्दय २ हुं ।। ततः शेषं बहिर्दद्यात् । तत्र मंत्राः । बलिं गृह्णंत्विमं देवा इत्यादयः पूर्वोक्ता एव । ततः स्नात्वा तिलकं धृत्वा देवीं प्रार्थयेत् ।। तत्र मंत्राः ।। खड्गिनी शूलिनी घोरा० १ शूलेन पाहि नो देवी० ४ नमो देव्यै महादेव्यै० ६ रूपं देहि

यशो देहि भग भगवति देहि मे । पुत्रान्देहि धनं देहि सर्वान्कामांश्च देहि मे । महिषघ्नि महामाये चामुंडे मुंडमालिनि ।। आयुरारोग्यमैश्वर्यं देहि देवि नमोऽस्तु ते ।। इति देवीं संप्रार्थ्य गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् । सिद्धिर्भवतु मे देवि प्रसादात्तव सुंदरि ।। इति देव्यै जपं निवेद्य ।। कृतस्य कर्मणः सांगतासिद्ध्यर्थं कुमारीब्राह्मणसुवासिनीः पूजापूर्वकं संभोज्य संकल्प्य वा न्यूनातिरिक्तदोषपरिहारार्थं ब्राह्मणेभ्यो भूयसीं दक्षिणां दत्त्वाग्निं संपूज्य विभूतिं धृत्वा गच्छ गच्छेत्यग्निं विसृज्य मूलमंत्रेण पुष्पेण देवी मुद्रास्य तेनैव षडंगं कृत्वा उत्तिष्ठ ब्रह्मणः अभ्यार० उत्तिष्ठ देवि चंडेशि शुभां पूजां प्रगृह्य च ।। कुरुष्व यमकल्याणमष्टभिः शक्तिभिः सह ।। इति मंत्रैर्विसृज्याचार्याय दत्त्वा मंत्रं पठेत् ।। त्रैलोक्यमातर्देवि त्वं सर्वभूतदयान्विते । दानेनानेन संतुष्टा सुप्रीता वरदा भव ।। ततः यस्य स्मृत्या० प्रमादात्कुर्वतां कर्म० इत्यादि जपित्वा कर्मेश्वरार्पणं कृत्वा सुहृद्युतो भुंजीत ।। इदमेव पूजा होमबल्यादिविधानं नवरात्रेपि ज्ञेयम् ।। तत्र विशेषस्तु दशम्यां प्रातर्देवीविसर्जनम् ।। अन्यच्च महानिबंधेभ्योऽवगन्तव्यम् ।।

इति संक्षेपेण नवचण्डीशतचण्डीसहस्रचण्डीप्रयोगः ।।

—:o:—

* आरती श्रीदुर्गाजी की *

जय अम्बे गौरी मैया जय अम्बे गौरी ॥

मैया जय मंगल करणी मैया जय आनन्द करणी ।
तुमको निशिदिन ध्यावत हरि ब्रह्मा शिवजी । जय अम्बे० ।
मांग सिन्दूर विराजत मृगमद कौ टीकौ । मैया मृगमद को टीकौ ।
उज्ज्वल से दोउ नैना चन्द्र वदन नीकौ ॥ जय अम्बे गौरी० २ ॥
कनक समान कलेवर रक्ताम्बर राजै । मैया रक्ता० ।
रक्तपुष्प गल माला कण्ठन पर साजै ॥ जय अम्बे गौरी० ३ ॥
केहरि वाहन राजत खड्ग खप्पर धारी । मैया खडग० ।
सुर नर मुनिजन सेवत तिनके दुःख हारी ॥ जय अम्बे गौरी० ४ ॥

कानन कुण्डल शोभित नासाग्रे मोती । मैया नासाग्रे० ।
कोटिक चन्द्र दिवाकर राजत सम जोती ॥ जय अम्बे गौरी० ५ ॥

शुम्भ निशुम्भ विदारे महिषासुर घाती । मैया महिषा० ।
धूम्र विलोचन नयना निशिदिन मदमाती ॥ जय अम्बे गौरी० ६ ॥

चण्ड मुण्ड दोउ मारे शोणित बीज हरे । मैया शोणित० ।
मधु कैटभ संहारे सुर भयहीन करे ॥ जय अम्बे गौरी० ७ ॥

ब्रह्माणी रुद्राणी तुम कमला रानी । मैया तुम० ।
आगम निगम बखानी तुम शिव पटरानी ॥ जय अम्बे गौरी० ८ ॥

चौंसठ योगिनि गावत नृत्य करत भैरों । मैया नृत्य० ।
बाजत ताल मृदंग और डमरू गहरों ॥ जय अम्बे गौरी० ९ ॥

तुमही जग की माता तुमही हो भरता । मैया तुम० ।
भक्तन की दुःख हरता सुख संपति करता ॥ जय अम्बे गौरी० १० ॥
भुजा चार अति शोभित अभय सुबर धारी । मैया अभय० ।
मनवांछित फल पावत सेवत नर नारी ॥ जय अम्बे गौरी० ११ ॥
कंचन थाल विराजत अगर कपूर बाती । मैया अगर० ।
श्रीमाल केतु में राजत कोटि रतन जोती ॥ जय अम्बे गौरी० १२ ॥
अम्बेजी की आरती जो कोई नर गावै । मैया जो० ।
कहत शिवानन्द स्वामी सुख सम्पति पावै ॥ जय अम्बे गौरी० ॥

श्रीमती कमला भार्गव द्वारा तेजकुमार प्रेस (इ० ०) लि०, लखनऊ में मुद्रित ।

हमारे धार्मिक प्रकाशन

सुखसागर	३५०/-
भक्तमाल भाषा अर्थात् भक्तकल्पद्रुम	
लेखक-श्री प्रतापसिंह	१५०/-
शिवपुराण-भाषा ग्यारह खंडों में	२००/-
रामायण तुलसीदास कृत टीका	३००/-
पं० सूर्यदीन शुक्ल	नेट १२५/-
महाभारत भाषा	१८०/-
रामायण तु० कृ० टीका पं० लक्ष्मण	३००/-
प्रसाद भारद्वाज सचित्र सजिल्द	नेट १२५/-
भक्तमाल नाभाजी सटीक बड़ी	२६०/-
सजिल्द	
भक्तिसागर चरणदास	१२५/-
योगवाशिष्ठ संपूर्ण दो भागों में	५१८/-
विश्राम सागर सटीक सचित्र	
सजिल्द	२२५/-
अनुराग सागर	२४/-
अष्टावक्र गीता सटीक	१००/-
चाणक्य नीतिदर्पण	२०/-
चित्रकूट माहात्म्य	७/-
प्रेम सागर सजिल्द	१२०/-
हनुमानचालीसा	५/-
स्त्रीसुबोधिनी	१००/-
सुन्दर विलास	३०/-
सुन्दर कांड गुटका	३/-
हनुमन्त बावनी	२/-
हरितालिका	३/-
भगवद्गीता भाषा सजिल्द	४०/-
शिव चालिसा	१/-
शतपंच चौपाई	३/-

तेज कुमार बुक डिपो
लखनऊ

श्रीमती स्मिता पटवर्धन, प्रबन्ध निदेशिका, तेज कुमार बुक डिपो (प्रा०) लि० द्वारा प्रकाशित
एवं आवरण पृष्ठ मॉडर्न प्रिन्टर्स, लखनऊ द्वारा मुद्रित

पुस्तक मिलने का पता
तेज कुमार बुक डिपो (प्रा०) लिमिटेड
उत्तराधिकारी - (नवल किशोर प्रेस बुक डिपो)
१, त्रिलोकनाथ रोड, लखनऊ–२२६ ००१
फोन – (०५२२) २६२३३१५
[सर्वाधिकार सुरक्षित]